ओ३म्

पुराण-तत्त्व-प्रकाश

द्वितीय भाग

जिसमें

श्री मद्भागवत, देवीभागवत, ब्रह्म, विष्णु, शिव, लिङ्ग, अग्नि, कूर्म, वाराह, भविष्य, ब्रह्म-वैवर्त्त, वामनादि, पुराणों से प्रमाण युक्त पूर्वक दर्शाया है कि अठारह पुराण

महर्षि व्यास प्रणीत नहीं हैं

जिसको

श्रीमान् पं० वंशीधर जी पाठक आगरा निवासी की सहायता से

चिम्मनलाल वैश्य कासगञ्ज

निवासीने

निर्मित कर

पं० बद्रीप्रसाद शुक्ल द्वारा देशबन्धु प्रेस बाराबङ्की में मुद्रित कराया।

जिसकी

रजिष्टरी ऐक्ट २५ सन् १८६७ ई० के अनुसार कराई है

द्वितीयावृत्ति ११०० | सन् १९२४ | मूल्य प्रति पुस्तक ।।) आठ आना

समर्पण।

प्रिय पाठकवृन्द !

मेरे परमपूज्य स्वर्गगामी पिता श्री० लाला टीकाराम जी

सत्य-प्रिय भाषण करने की बड़ी रुचि थी, इस कारण उनका प्रेम भी ऐसे महापुरुषों के साथ रहता था। मैं अपने पिता का एकलौता पुत्र हूं। पास ऐसा धन का भण्डार नहीं, जिससे पाठशाला, धर्मशाला, अनाथालय इत्यादि बनवाकर संसार में उनके नाम स्मरणार्थ छोड़ सकूं। हां मैंने बड़े परिश्रम के साथ इस ग्रन्थ को तय्यार किया है, जिस में सत्य-प्रिय-कथन है जिस से देश के उपकार होने की भी सम्भावना है उसी को आज मैं—

अपने माननीय पिता के नाम पर समर्पण करता हूं।

हे शक्तिमान् प्रभो !

आप दयाभण्डार हो। आप की कृपा से यह पुस्तक लोक [illegible] जिस से मेरे पिता का नाम चिरस्थायी रहे॥ ॐ शम्॥

आवश्यक सूचना।

इस पुस्तक का उर्दू अनुवाद उर्दू जानने वालों के हितार्थ शीघ्र छप कर तय्यार हो जायगा अतएव कोई महाशय इस पुस्तक और इसके किसी परिच्छेद को उर्दू अनुवाद करने का कष्ट न उठावें।

आपका शुभचिंतक—
चिम्मनलाल,
तिलहर यू० पी०
जिला शाहजहांपुर

स्थान आर्य्यमन्दिर

पुराण-तत्व-प्रकाश

द्वितीय-भाग ।

पन्द्रह दिन व्यतीत होने के पश्चात् नियत समय पर
श्रीमान् पण्डित जी और अन्य महाशयों का

प्रवेश ।

आर्यसेठ—श्रीमान् पण्डित जी को आते देख उठ कर दोनों हाथ जोड़ कर बड़े प्रेम से श्रीमान् को नमस्ते कर कहा कि आइये, पधारिये, विराजमान हूजिये ।

सुयोग्य पण्डितजी—ने हर्ष के साथ आयुष्मान् कहा और विराजमान हुए ॥

सेठजी—से कुशल मङ्गल और गृह के समाचार पूंछे जिस का उन्हों ने यथावत् उत्तर दिया इतने में अन्य महाशयगण भी आगये सब ने श्रीमान् को यथायोग्य कह कर आनन्द समाचार सुने । इस के उपरान्त श्रीमान् ने सेठ जी से कहा अब आप कथा का आरम्भ कीजिये परन्तु प्रथम आप देव और त्रिदेव-लीला को संक्षेप से सुना कर अन्य विषय को सुनाना आरम्भ करें ।

आर्यसेठ—बहुत अच्छा जो आप की आज्ञा, प्रथम निम्न लिखित मन्त्र से ईश्वर की प्रार्थना की—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

जो ईश्वर प्राणों से प्यारा, दुःखभञ्जन, सुखस्वरूप, जगत्पिता, अत्यन्त भजने के योग्य, विज्ञानस्वरूप, दिव्यगुणयुक्त, सब के आत्माओं का प्रकाशक,

रूद सुखों का दाता परमेश्वर है उसको प्रेमभक्ति से निश्चयकर अपनी आत्माओं में धारण करें वह हमारी बुद्धियों को उत्तम धर्म संयुक्त कामों में लगावे ॥

पुनः पण्डित जी से कहा कि अब मैं आप को इन्द्र, चन्द्र, सूर्य्य, वशिष्ठ, विश्वामित्र, बृहस्पति, शुक्र, अगस्त्य, भृगुजी, बड़े २ देव और मुनियों की लीला सुनाता हूं फिर त्रिदेव लीला को सुनाऊंगा।

नवम परिच्छेदः

देव और मुनि लीला।

इन्द्र लीला।

आर्य्यसेठ--श्रीमान् इन्द्र महाराज देवतों में देवराज कहलाते हैं, परन्तु पुराणों के पाठ करने से उनके कार्य्य बड़े घृणित प्रतीत होते हैं। देखो जब कोई पुरुष तप करने का प्रबन्ध करता और ज्यों २ तप निर्विघ्न होता जाता त्यों २ देवराज के हृदय में घबराहट उत्पन्न हो जाती फिर वह उसके तप भङ्ग करने के अनेकान उपाय सोच उनको काम में लाते- कहां तक कहें वह बड़ी २ अपसराओं को भेज काम के वशीभूत करा उनको तप से भ्रष्ट करा देते और स्वयं भी, बहुत सी अप्सराओं को रखते. और इसपर भी देवताओं में श्रेष्ठ देवराज के पद पर सुशोभित हैं।

देवी भागवत्--स्कंद ४ अध्याय १२ में लिखा है कि शुक्र महाराज दैत्यों की विजय के लिये महादेव जी के समीप बृहस्पति के समान मन्त्र लेने गये तब महादेव जी ने उन से कहा कि १०० वर्ष धूम्रपान करो फिर मन्त्र बतलायेंगे। उन्होंने ऐसा ही किया जब यह वृत्तान्त इन्द्र महाराज को ज्ञात हुआ तो अपनी पुत्री जयन्ती से कहा कि तुम तुमको शुक्र

महाराज को दिये देते हैं तुम उनको प्रसन्न कर उनका तप भंग करो या वह तुम पर वैसे दया करने लगें। यह सुन कन्या वहां गई और उनकी अच्छे प्रकार से सेवा की। जब १०० वर्ष व्यतीत हो गये और शिव जी ने प्रसन्न होकर उनको वर दिया तब शुक्र जी ने जयन्ती से कहा कि तुम कौन हो और क्या चाहती हो सत्य कहो हम तुम्हारी सेवा से प्रसन्न हैं जो तुम मांगोगी वही तुमको देंगे। तब जयन्ती ने कहा कि आप अपने तपोबल से जान लीजिये। इस पर उन्होंने कहा कि मैंने जान लिया। परन्तु तुम भी तो कहो। तब उसने अपने आने का वृत्तान्त कह सुनाया जिसके लिये इन्द्र ने भेजा था। जिसको सुन मुनि ने कहा कि अच्छा हम तुम्हारे साथ सौ वर्ष तक अलक्ष में विहार करेंगे और वैसा ही किया।

मया सहत्वं सुश्रोणि दशवर्षाणि भामिनी।
सर्वैर्भूतैरदृश्या चरम स्वेह यदृच्छया।
एवमुक्त्वा गृहं गत्वा जयन्त्याः पाणिमुद्वहन्।
तया सहावसद्देव्या दशवर्षाणि भार्गवः॥

पद्मपुराण—स्वर्ग तृतीय खंड अध्याय २४ में भी यह कथा लिखी है।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण—के कृष्णजन्म खण्डअध्याय ६१ में लिखा है कि एक बार इन्द्र मन्दाकिनी नदी के तट गौतमऋषि की स्त्री अहिल्या को देख काम के वशीभूत हो गये। दैवयोग से किसी दिन गौतम शङ्कर के यहां गये हुए थे इधर इन्द्र ने अपना मनोरथ सिद्ध्यर्थ महात्मा गौतम का रूप बना अहल्या के यहाँ जाकर विहार किया।

एकदा गौतमः शीघ्रं जगाम शङ्करालयम्।
शक्रो गौतमरूपेण तां सम्भोगं चकारसः॥ ४४॥

इतने में गौतम घर आये उन्होंने दोनों के अनुचित व्यवहार को देख कर इन्द्र से कहा कि जा तेरे शरीर में भग ही भग हो जायंगी। और अहल्या से कहा कि तू शिला हो जा।

नग्नामहल्यां रहसि पीनश्रेष्ठि पयोधरां।
मुनिः शशाप शक्रं च भगाङ्गश्च भवेति च॥

कोपाच्छशाप पत्नीश्च सदन्तीं भयविह्वलाम् ।
त्वञ्च पाषाणरूपा च महारण्ये भवेति च ॥

यही कथा गणेशपुराण और मार्कण्डेय पुराण अध्याय ५ में लिखी है।

नृसिंह उपपुराण अध्याय ६३में लिखाहै कि एक दिन इन्द्र विमान पर बैठकर मानसरोवर पर गये जहां कुवेर की स्त्री को देख मोहित होगये और उसके गृहको गये। उधर इन्द्र की आज्ञा से कामने स्त्री को प्रेरित किया तब वह काम के वशीभूत हो पूजाछोड़ कर इन्द्रके पास गई। फिर अपने २ वृत्तान्तको एक दूसरे ने सुनाया। तिसपर इन्द्र ने कहा कि हमको भजो तुम्हारे विना हमको आनन्द नहीं। इन्द्र उसको मन्दराचल पर्वत की कन्दरा में लेगये वहां अच्छे प्रकार विहार किया। जब कुवेर को यह समाचार मिले कि उनकी स्त्री चित्रसेना को कोई चुराकर ले गया तब वह आत्मघात करने पर उतारू होगये उस पर मन्त्री ने नाड़ीजङ्घा नाम राक्षसी उसके खोज के लिये भेजा जो अत्यन्त सुन्दररूप धारण कर इन्द्र के स्थान को गई जिसको देख इन्द्र वशीभूत हो गये और उसको विमान में बिठला गुप्त स्त्री को दिखलाने के लिये चले। मार्ग में नारद महाराज मिले उस समय इन्द्र से कुशल क्षेम पूछने के पीछे नाड़ीजङ्घा से पूंछा कि राक्षसों के यहां आनन्द है। तेरे भाई विभीषण प्रसन्न हैं। उस समय इन्द्र ने बहुत विस्मित हो कहा कि इस दुष्टा ने हमको खूब छला अन्त को उसके मारने का विचार कर महात्मा तृणविन्दु के आश्रम पर उसके केश पकड़कर खेंचा वह रोदन कर पुकारने लगी इतने में महात्मा भी आगये जिन्होंने कहा कि रोदन करती हुई स्त्री को छोड़ दे परन्तु इन्द्र ने कोप के कारण कुछ न सुना और उसको मारडाला। उस समय मुनि ने कोप कर इन्द्र से कहा कि हे दुष्ट! तूने हमारे तपोवन में ऐसा कार्य्य किया इस कारण तुम मेरे शाप से स्त्री होजाओ। तुरन्त इन्द्र **स्त्री होगये**

इन्द्र महाराज की और लीलाओंको सुनिये जब अदितिके इन्द्र उत्पन्न हो गये उसके बहुत काल व्यतीत होने पीछे दितिने कश्यप से कहा कि इन्द्रके समान हमारे भी पुत्र हों तब मुनि ने कहा कि पयोव्रत करो तो वैसाही पुत्र होगा दिति ने स्वीकार कर गर्भ धारण के पीछे पयोव्रत में स्थित हो गई। गर्भ बढ़ चला थोड़े ही दिन प्रसूति के रह गये तब अदिती ने अपने पुत्र इन्द्र से कहा कि जिस प्रकार से हो सके दिति का गर्भ गिरा दो नहीं तो तुम से भी अधिक प्रतापी पुत्र उत्पन्न होगा और राज छीन लेगा। यह सुन इन्द्र दितिजी के निकट

जा उनकी सेवा में लग गया एक दिन वह दिन में सो गई इन्द्र पैर दाब रहे थे अन्त को वह सूक्ष्मरूप को धारण कर दिति के गुप्त स्थान में प्रवेश कर गये और गर्भ के वज्र से सात खण्ड कर दिये जब वह रोने लगे तो फिर एक २ के सात ३ खण्ड कर दिये जो ४६ पवन हो गये इसी भांति वृत्रासुर से मित्रता कर विश्वासघात किया।

पद्मपुराण सृष्टिखंड अध्याय १२ में लिखा है कि पुरूरवा और इन्द्र में बड़ा प्रेम था एक दिन इन्द्र के आगे उर्वशी नाच रही थी राजा पुरूरवा भी वहां बैठे थे जिन के रूप को देख वह सब भूल गई इन्द्र ने उसको शाप दिया कि आज से ५५ दिन तक तू लता हो कर रहेगी और राजा प्रेत होकर तेरे साथ भोग करेंगे।

पञ्चपञ्चाशदब्दानि लताभूता भविष्यसि।

अध्याय १७ में लिखा है कि जब ब्रह्माजी ने यज्ञ करने का आरम्भ किया और सावित्री जी के आने में देर हुई तब इन्द्र ने एक गोप कन्या को लाकर खड़ा कर दिया जिस के साथ विष्णु की सम्मति से गान्धर्व विवाह कर यज्ञ करने में लग गये इतने में सावित्री देवी आईं और वृतान्त को जान इन्द्र से कहा कि तुमने यह अनुचित कार्य्यवाही की है इस से इन्द्र तुम कभी संग्राम में न जीतोगे पुत्र भी तुम्हारा नष्ट हो जायगा।

यस्मात्ते क्षुद्रकं कर्म तस्मात्त्वं लप्स्यते फलम्।
यदा संग्राममध्ये त्वं स्थाताशक्तोभविष्यसि॥
तदा त्वं शत्रुभिर्बद्धो नीतः परमिकां दशाम्॥
पराभव महत्प्राप्य न चिरादेव मोक्ष्यसे॥ १५० ॥

मार्कण्डेयपुराण जिल्द नम्बर १ अध्याय ३ में लिखा है कि इन्द्र वृद्ध पक्षी का रूप धारण कर एक मुनि के पास गये और कहा कि मुझ को भोजन दो मुनि ने कहा कि जो भोजन की इच्छा हो सो लो। तब इन्द्र ने मनुष्य मांस की इच्छा की। मुनि ने अपने पुत्रों से कहा जिन्होंने अपना मांस देने से इन्कार किया तब पिता ने पुत्रों को शाप दिया कि तुम सब पक्षी होजाओ और इन्द्र से कहा कि अब तुम मेरे शरीर का मांस भक्षण करो।

भक्षयस्व सुविश्रब्धो मामत्र द्विजसत्तम ! ।
आहारीकृतमेतत्ते मया देहमिहात्मनः ॥ ४६ ॥

तब इन्द्र ने कहा कि मैं योगाभ्यास करके अपने शरीर को छोड़ दूंगा और इस समय किसी जीव के मांस को भक्षण न करूंगा । यह सुन मुनि ने ध्यान से देखा और इन्द्र पक्षी का रूप छोड़ अपने रूप में हो गये तब इन्द्र ने कहा कि आप पाप रहित हैं आप की परीक्षा के लिये मैं आया था ।

भो भो विप्रेन्द्र बुध्यस्व बुध्याबोध्यं बुधात्मक ।
जिज्ञासार्थं मयाऽयं ते अपराधः कृतोऽनघ ॥ ५२ ॥

——:o:——

चन्द्र लीला ।

देवीभागवत स्कंद १ अध्याय ११ में लिखा है बृहस्पति की स्त्री तारा बड़ी सुन्दर थी । एक दिन अपने यजमान के गृह गई । उस को देख चन्द्रमा और तारा, चन्द्रमा को देख कामातुर हुई । फिर कई दिन तक दोनों ने विहार किया ।

दिनानि कतिचित्तत्र जातानि रममाणयोः १ ११ ६ ॥

फिर बृहस्पति ने अपने शिष्य को भेज बुलाया पर वह न गई तब बृहस्पति जी आप गये और कहा कि हम देवताओं के गुरु हैं तुम हमारे यजमान हो जो मूर्ख गुरु की स्त्री से भोग करता है वह महापातकी होता है । चंद्रमा ने कहा कि हमने नहीं बुलाया वह आप अपनी इच्छा से आई है । वह अपने घर को चले गये फिर थोड़े दिनों के पीछे कहा कि तुम मेरे शिष्य हो गुरु पत्नी माता के समान होती है इस पर चन्द्रमा ने कुछ न सुना तब वह इन्द्र के पास गये और सब वृतान्त कहा तब इन्द्र ने चन्द्रमा के पास दूत भेजा जिसने जाकर सब वृतान्त कहा और यह भी निवेदन किया आप के यहाँ २८ स्त्रियां हैं और इसके उपरान्त रम्भा आदि भी विहार के लिये मौजूद हैं तब चन्द्रमा ने कहा कि इन्द्र और बृहस्पति दोनों बड़े ज्ञानी हैं जो अपनी सुधि नहीं लेते देखो बृहस्पति ने अपने बड़े भाई की स्त्री ममता को ग्रहण कर लिया उसी दिन से तारा अप्रसन्न हो गई ।

इस से तुम कह दो हम नहीं देंगे उसने वैसा ही कह दिया। फिर क्या युद्ध की तय्यारी होने लगी उधर शुक्र ने चन्द्रमा से कहा कि तुम कदापि न देना हम तुम्हारी सहायता करेंगे। अन्त को बहुत दिनों तक युद्ध हुआ तब ब्रह्मा जी ने समझा कर तारा को चन्द्रमा से दिला दिया परन्तु चन्द्रमा ने उस को गर्भिणी कर दिया। जब पुत्र हुआ तब चन्द्रमा ने कहा कि हमारे सादृश्य पुत्र हुआ है हम को देदो। इस पर फिर संग्राम की ठहरी। तब ब्रह्मा ने एकान्त में तारा से पूछा कि किस का पुत्र है उस ने धीरे से कहा कि चन्द्रमा का। तब उन्होंने चन्द्रमा को दिला दिया जिस का नाम बुध रक्खा।

तारापप्रच्छ धर्मात्मा कस्यायं तनयः शुभे।
सत्यं वद वरारोह यथा क्लेशः प्रशाम्यति॥ ८२॥
तमुवाचाऽसितापांगी लज्जमानाप्यधोमुखी।
चन्द्रस्येति शनैरंतर्जगाम वरवर्णिनी॥ ८३॥
जग्राह तं सुतं सोमः प्रहृष्टेनांतरात्मना।
नामचक्रे बुध इति जगाम स्वगृहं पुनः॥ ८४॥

यही कथा ब्रह्मवैवर्त्त पुराण प्रकृतिखंड अध्याय ५८ में भी लिखी है।

सूर्य लीला।

देवी भागवत स्कंद २ अध्याय ६ में लिखा है कि शूरसेन राजा की कन्या कुन्ती जिसको कुन्तिभोज नाम राजा कन्यापन में माँग ले गये थे एक दिन राजा ने कुन्ती को अग्निहोत्र की अग्नि की रक्षा के लिये नियत किया। तब किसी समय दुर्वासा ऋषि आये और राजा ने उनको चातुर्मास्य के निमित्त टिकाया जिन की कुन्ती ने बड़ी सेवा की जिस से प्रसन्न हो उन्होंने उन को एक मन्त्र बताया कि इस से तुम जिस देवता का ध्यान करोगी वह आकर तुम्हारी मनोकामना सिद्ध करेगा। इतना कह मुनि तो चले गये उसने मंत्र की परीक्षा लेने के लिये मन्त्र पढ़ के सूर्य का आह्वान किया। वह मनुष्य का रूप धर वहाँ आये जिस के भय से वह रजोवती हो गई और कहा कि मैं आप के दर्शन से प्रसन्न हुई अब आप अपने मण्डल को जाइये। तब सूर्य ने कहा कि तूने हमको क्यों बुलाया था अबकि हमको वैसेही वापिस करतीथी हमतो तुम

को देख कर कामातुर हुए हैं इस से हमको भजो। तब उन्होंने कहा कि हम तो अभी कन्या हैं आप सर्व साक्षी और धर्मज्ञ हैं हम कुलीन की कन्या हैं इस से आप को ऐसे वचन न कहने चाहिएँ। देवी भागवत स्कंद २० अ० ११ श्लोक २४ में कहा है।

कुन्त्युवाच—कन्याऽस्माहं तु धर्मज्ञ सर्वसाक्षिन्नमाम्यहम्।
तवाप्यहं न दुर्वाच्या कुलकन्याऽस्मि सुत॥

तब सूर्य्यनारायण ने कहा कि ऐसे जाने से तो हमको बड़ी लज्जा आवेगी क्योंकि सब देवता हमारी निंदा करेंगे कि ज्यों के त्यों ही लौट आये इस से हमको रति दो नहीं तो जिसने तुमको मन्त्र बताया है उसको और तुम्हें दोनों को हम शाप देंगे। तुम्हारा कन्याव्रत भंग न होगा यह कह कुन्ती में धारण कर अपने मण्डल को चले गये।

इत्युक्तो तरणिः कुन्तीं तन्मस्कां सुलज्जिताम्।
भुक्त्वा जगाम देवेशो वाग्दत्वाऽतिवाञ्छितम्॥ २८॥
गर्भं दधार सुश्रोणी सुगुप्ते मंदिरे स्थिता॥ २९॥

यह गुप्त स्थान में रहने लगी जिस के भेद को एक दासी के उपरांत किसी ने न जाना। जब सूर्य के समान पुत्र हुआ तब दासी के हाथ एक मंजूषा में बन्द कर गंगा में छुड़वा दिया जिस को श्री अधिरथ ने लेकर अपनी स्त्री को दिया जिस का राधा नाम था इस लिये वह राधा पुत्र कहलाया।

पद्मपुराण—सृष्टिखंड अध्याय आठ में लिखा है कि विश्वकर्मा की कन्या संज्ञा जो सूर्य को व्याही गई थी जब वह अपने पति का तेज न सह सकी तब उसने अपने शरीर से अपने समान एक स्त्री उत्पन्न की जिस का नाम छाया था उसको वह अपनी संतान सौंपकर चली गई। छाया रह गई जो सूर्य्यनारायण की सेवा करने लगी। जिससे सन्तान हुई फिर वह अपनी सन्तान पर अधिक प्रेम करने लगी। जिस का वृतान्त जब सूर्य्य को मालूम हुआ तब सूर्य्य भगवान् संज्ञा के पिता के समीप गये और उनकी पुत्री का सब वृतान्त कहा। उस समय विश्वकर्म्मा ने कहा कि आप का तेज न सह कर वह संज्ञा घोड़ी का रूप धारण कर हमारे निकट चली आई जब हमने उससे कहा कि तूने अपने पतिके प्रतिकूल काम किया है तुम हमारे यहाँ न आओ इस पर वह उसी रूप में मरुदेश में

चली गई और वहाँ ही है इस लिए आप हम-से प्रसन्न हों और आप कहें तो हम आप को यन्त्र पर चढ़ा कर कुछ छील डालें जिसमें तेज कम होजाय। तब संज्ञा भी आप का तेज सह सकेगी। तब सूर्य्य ने कहा कि अच्छा इस पर विश्वकर्मा ने सूर्य को यन्त्र पर चढ़ा कर उन का तेज छील डाला उसी तेज से विष्णु भगवान्का सुदर्शनचक्र, महादेवका त्रिशूल और इन्द्रका वज्र बनाया गया।

तस्मात्प्रसादं कुरु मे यद्यनुग्रह भागहम्।
अपनेष्यामि ते तेजः कृत्वा यंत्रे दिवाकरम्॥
रूपं तव करिष्यामि लोकानंदकरं प्रभो।
तथेत्युक्तः स रविणा भूमे कृत्वा दिवाकरम्॥
पृथक् चकार तेजश्च चक्रं विष्णोः प्रकल्पयत्।
त्रिशूलं चापि रुद्रस्य वज्रमिंद्रस्य चापरे॥

इस प्रकार जब सूर्य का अद्भुत रूप विश्वकर्मा ने बना दिया उस में भी चरण बहुत उत्तम बनाए पर उन सूर्य के चरणों को वे मारे तेज के न देख सके तब उन्होंने बहुत कम तेज के पात्र उनके कर डाले।

नाशशाक च तद्द्रष्टुं पादं रूपं रवेः पुनः।
अद्यापि च ततः पादौ न कश्चित्कारयेत्क्वचित्॥

इस के पीछे सूर्यनारायण भूलोक पर आए वा घोड़े का रूप धारण कर उस घोड़ी के रूप को प्राप्त संज्ञा के संग विहार करने लगे।

पर तौ भी तेज विशेष था संज्ञा ने जाना कि और कोई है इस कारण उसको और भी विह्वलता हुई और बहुत ही व्याकुल हुई पर दूसरा पति जान कर नाक से सूंघ उसने सूर्य का वीर्य अलग कर दिया उसी से अश्विनीकुमार नाम देवताओं के वैद्य उत्पन्न हुए।

ततः स भगवान् गत्वा भूर्लोकममराधिपः।
कामयामास कामार्तो मुखदिवाकरः॥
अश्वरूपेण महता तेजसा च समन्वितः।
संज्ञा च मनसा क्षोभमगमद्भय विह्वला॥

नासापुटाभ्यामुत्सृष्टं परोयमिति शंकया ।
तस्याथ रेतसो जातावश्विना वितिनां श्रुतम् ॥

फिर जब संज्ञा ने जाना कि हमारे स्वामी सूर्य्य ही अश्व का रूप धारण कर आये हैं तब बहुत प्रसन्न हुई और अपना पूर्व रूप धारण कर अपने पति के साथ विमान पर चढ़ कर देवलोक को चली गई ।

ज्ञात्वा चिराच्चतं देवं सन्तोषमगमत्परं ।
विमाने नागमत्स्वर्गं पत्न्यासह मुदान्वितः ॥

———:*:———

वशिष्ठ और विश्वामित्र लीला ।

मार्कण्डेयपुराण अध्याय ७ से प्रकट होता है कि त्रेतायुगमें राजा हरिश्चंद्र धर्मात्मा राजा हुये जब वशिष्ठजी ने विश्वामित्र का सब वृतान्त और राजा हरिश्चन्द्र की दशा को सुना तो क्रोध में आकर उन को शाप दिया कि तुम बगुला हो जाओ ।

तस्माद्दुरात्मा ब्रह्मद्विट् यज्वनामवरो पिताः ।
मच्छापोपहतो मूढः सबकत्वमवाप्स्यति

जब इस शाप को विश्वामित्र ने सुना तब वशिष्ठ की तरफ क्रोध करके विश्वामित्र ने शाप दिया कि तू भी मेरे शाप से सूती अर्थात् सारस पक्षी का शरीर धारण कर ।

श्रुत्वा शाप महातेजा वशिष्ठं प्रति कौशिकः ।
त्वमप्याडिर्भवत्सूती प्रतिशापमयच्छत ॥

जब दोनों पक्षी होगये तब क्रोध से दोनों आपस में लड़ने लगे और उस से बड़ा हाहाकार मच गया तब देवताओं को साथ लेकर ब्रह्माजी वहाँ गये और कहा अब न लड़ो परन्तु इस पर भी उन्होंने न माना तब ब्रह्माजी संसार का नाश होते हुये देख कर और उन दोनों महात्माओं की भलाई चित्त से विचार कर तिर्य्यग्भाव उन का हर लिया जब वह तामसी भाव को छोड़ कर अपने शरीर अर्थात् वशिष्ठ और विश्वामित्र होगये तब ब्रह्मा ने कहा कि तुम दोनों ने अपनी २ बड़ाई को छोड़ कर तामसी भाव को प्राप्त होकर ऐसा युद्ध किया

देखो काम, क्रोध यह दोनों तपस्या में विघ्न डालने वाले हैं, जिनके वश होकर तुमने अपनी तपस्या में हानि की अब इस पाप को छोड़दो तबही कल्याण होगा ब्राह्मण के वास्ते तपस्या ही बड़ा बल है।

तपोविघ्नस्य कर्त्तारौ कामक्रोधवशं गतौ।
परित्यज भद्रं वो ब्रह्म हि प्रचुरं बलम्॥

यह सुन कर दोनों महात्मा लज्जित हो अपना २ क्रोध छोड़कर आपस में मिलगये। ब्रह्मा जी अपने लोक को चले गये॥

———:o:———

बृहस्पतिजी।

यह महाविद्वान् देवताओं के गुरु थे इनके विषय में लिखा है कि इन्होंने अपने बड़े भाई उतथ्य की स्त्री को अपनी स्त्री बनाया था देवताओं की जीत के लिये शुक्र का रूप धारण कर १०० वर्ष तक दैत्यों के गुरु बन उन को धर्मच्युत कर दिया था जिस से देवतों ने उन को फिर परास्त कर दिया परन्तु फिर शुक्र के प्रताप से विजय पाई॥

———:o:———

शुक्रजी।

यह दैत्यों के गुरु थे और सदा धर्म से उनकी विजय चाहते थे एक बार जब दैत्य बहुत निर्बल होगये तो आप ने महादेव जी की तपस्या कर वर पालिया फिर दैत्यों की रक्षा में लगे रहे—इसी बीच इन्द्रजी ने अपनी पुत्री जयन्ती को शुक्र के प्रसन्न करने के लिये या कहिये तप भ्रष्ट करने को उनके पास भेजा था उन्हों ने १०० वर्ष तक अदृश्य हो जयन्ती से भोग किया और अपनी पुत्री देवयानी के कहने से मृतक कचको कई बार जीवित कर दिया था॥

अगस्त्यमुनि केविषय में प्रसिद्ध चला आता है कि आप ने समुद्र के सब जल को पान कर लिया था विंध्याचल पर्वत जब सूर्य के मार्ग को रोकना चाहता था तब आपने उससे कहा कि अभी न बढ़ो जब हम दक्षिण से लौट आवें तब बढ़ना उसने ऐसाही किया और आज तक पृथ्वी पर पड़ा हुआ है अगस्त्य आज तक आते हैं अर्थात् उस से मिथ्या बोले। एक बार अगस्त्यमुनि

को स्त्री की इच्छा पूर्ण करने के लिये धन की चाहना हुई तब यह इल्वल नाम राक्षस के पास गये जिसने अपने भाई वातापी को काट अगस्त्यमुनि को भोजन कराये वह उस को बुरी आसन पर बैठ कर सब मांस खागये जब इल्वल ने वातापी को पुकारा तब अगस्त्यजी ने कहा कि वह पच गया अब नहीं निकल सकता देखो वनपर्व अध्याय ९९।

तं प्रहस्याब्रवीद्ब्रह्मागस्त्यो मुनिसत्तमः ।
कुतो निष्क्रमितुं शक्तो मया जीर्णस्तु सोऽसुरः ॥

कश्यप मुनि ।

देवीभागवत स्कंद ४ अध्याय ३ में लिखा है कि—

एक समय की बात है कि कश्यप मुनि यज्ञ करने के निमित्त वरुण की गायें चुरा लाये और मांगने पर भी नहीं दीं तब वरुण जी ने ब्रह्माजी के पास जा प्रणाम कर कहा कि कश्यप हमारी धेनु चुरा ले गये और मंगाने पर भी नहीं देते इस से हमने उन्हें शाप दिया है कि मनुष्य लोक में गोपाल और तुम्हारी दोनों स्त्रियां भी गोपी होकर जिस प्रकार हमारी गायें बिना बच्चों के रोती हैं उसी भांति तुम बन्दी गृह में पड़ कर रुदन करोगे। इतना कह कर ब्रह्माजी ने कश्यप जी को बुलाया और कहा कि आप ज्ञाता हो अन्याय से इन की गायें क्यों लीं और मांगने पर भी नहीं दीं इस लिये तुम्हारे पुत्र होते ही मरते जायेंगे ॥

मृतवत्सादितिस्तस्माद्भविष्यति धरातले ।

भृगुजी—महाराज ने महादेवजी को शाप दिया कि स्त्री के संग मस्त होकर मेरा निरादर किया इस लिये योनि लिंग का स्वरूप तुम्हारा हो जाय। जैसा कि पद्मपुराण षष्ठ उत्तर अ० २५५ में लिखा है।

नारीसंगममत्तोसौ यस्मान्मामवमन्यते ।
योनिलिङ्गस्वरूपं वै तस्मात्तस्य भविष्यति ॥

और विष्णु महराज को भी शाप दिया कि आपने बिना अपराध के मेरी माता का शिर काट डाला इस लिये पृथ्वी पर सात जन्म तक मनुष्यों के बीच में उत्पन्न होगे।

यत्त्वया जानता धर्ममवध्यास्त्रीनिषूदिता ।
तस्मात्त्वं सप्तकृत्वो हि मानुषेषूपयास्यसि ॥

इस के उपरान्त उन्होंने मरी हुई अपनी माता को तपोबल के प्रताप से जीवित कर लिया था। देखिये कैसा अनोखा तपोबल है।

देवी भागवत अध्याय ४। १३ में राजा जन्मेजय ने कहा है कि देवताओं के गुरु अंगिरा के पुत्र धर्मशास्त्र, पुराण, वेद के वक्ता होकर मिथ्या बोलें तो फिर अन्य मनुष्य क्या मिथ्या भाषण न करेंगे— हरि, ब्रह्मा, इन्द्र, और अन्य देवता छल करने में बड़े दक्ष हैं तो अन्य मनुष्यों की क्या कथा। वशिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र, बृहस्पति जब यही लोग पाप करने लगे तो धर्म की कहां गति और इन्द्र, अग्नि, चन्द्रमा और ब्रह्मा यही लोग परदारा गमन करते हैं तो श्रेष्ठत्व त्रिलोकी में किन में स्थित होगा किनके वचन उपदेश के विषय में माने जायंगे। क्योंकि बृहस्पति आदि की तो यह दशा ठहरी कि देवताओं के कहने से शुक्र का रूप दैत्यों से छल करने के निमित्त धारण कर लिया फिर संसार में छल कौन न करेगा॥

अमराणां गुरुः साक्षान्मिथ्यावादीस्वयंयदि ॥
तद्वाकःसत्यवक्तास्याद्राजसस्तामसः पुमः ॥ ८ ॥
क्वस्थितिस्तस्य धर्मस्य संदेहो यं ममात्मनः ।
का गतिः सर्वजन्तूनां मिथ्याभूतेजगत्त्रये ॥ ९ ॥
हरि ब्रह्माशचीकांतस्तथान्ये सुरसत्तमा ।
सर्वेछलविधौदक्षा मनुष्याणां च का कथा ॥ १० ॥
छलेदक्षाः सुराः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः ॥ ११ ॥
वसिष्ठो वामदेवश्च विश्वामित्रा गुरुस्तथा ।
एते पापरतः कात्र गतिर्धर्मस्य मानदा ॥ १२ ॥
इन्द्रोग्निश्चन्द्रमावेधाः परदाराभिलंपटा ।
आर्य्यत्वं भुवनेष्वेषुस्थितं कुत्र मुने वद ॥ १३ ॥

वचनं कस्य मन्तव्यमुपदेशधियाऽनघ ।
सर्वे लोभाऽभिभूतास्ते देवाश्च मुनयस्तदा ॥ १४ ॥

तब व्यासजी ने कहा कि ब्रह्मा क्या अन्य सब देव रागी हैं क्योंकि जो देह को धारण करेगा उसमें विकार अवश्य होंगे हां यह चतुर हैं इससे इनका रागी होना सर्वथा विदित नहीं होता समय समय पर यह भी मरते और जन्म लेते हैं। फिर इनके मिथ्या बोलने छल करने में शंका क्या हुई।

यह संसार इसी प्रकार का है भला देह धारण करके कौन पाप नहीं करता देखो बृहस्पति की भार्य्या चन्द्रमाने केली थी बृहस्पति ने अपने भाईकी स्त्री को ग्रहण कर लिया था। जैसा कि—

किं विष्णुः किं शिवो ब्रह्मामथवा किं बृहस्पतिः ।
देहवान् प्रभवत्येव विकारैः संयुतस्तदा ॥ १५ ॥
रागीविष्णुः शिवो रागी ब्रह्माऽपि रागसंयुतः ।
" रागवान्किमकृत्यं वै न करोति नराधिप "
रागवानपि चातुर्याद्विदेह इव लक्ष्यते ॥ १६ ॥
म्रियते नात्र संदेहो नृपकिंचित्कदाऽपिच ।
स्वायुषाऽते पद्मजाद्याः क्षयमृच्छंति पार्थिव ॥ २९ ॥
प्रभवन्ति पुनर्विष्णुर्हरशक्रादयः सुराः ।
तस्मात्कामादिकान्भावान्देहवान्प्रतिपद्यते ॥ ३० ॥
नाऽत्र ते विस्मयः कार्यः कदाचिदपि पार्थिव ।
तस्माद्बृहस्पतिभार्या शशिनालंभिता पुनः ॥ ३१ ॥
गुरुणा लंभिता भार्या तथाभ्रातुर्यवीयसः ।
एवं संसारचक्रेऽस्मिन्रागलोभादिभिर्वृतः ॥ ३२ ॥

इन्द्रका ४९ पवनों को और सूर्य्य महाराजका घोड़ा बन संज्ञा घोड़ी के साथ समागम कर अश्विनीकुमार का उत्पन्न करना । शुक्र महाराज का मृतक कचका जीवित करना आश्चर्य्य जनक और सृष्टिक्रम के विपरीत है । तदन्तर बृहस्पति जी का मिथ्या बोलना । वसिष्ठ और विश्वामित्रजी का क्रोधी होना । कश्यपका

चोरी और अगस्त्यजी का मनुष्यमांस भक्षण करना। पढ़कर रोना आता है क्यों कि हम सब ऋषियोंकी सन्तान होते हुए अपने प्राचीन पुरुषाओं की निन्दा को पढ़ने सुनते चले आते हैं और कुछ विचार नहीं करते क्या पण्डितजी ऋषियोंका रक्त शरीर में शेष नहीं रहा। जब ही तो इन निन्दायुक्त पुराणोंके न मानने वाले आर्य्यों को आप निन्दक कहते हैं। अब मेरी आप सबसे यही प्रार्थना है कि आप विचार कर सत्यका गृहण करें।

सेठजी—पण्डितजी अब मैं इस विषयको समाप्त करता हूं। श्रीमान् कहिये जहां उपरोक्त कार्य्य देवतों के हों वहां की मनुष्यलीला का क्या ठीक। फिर भी आप यह कहते ही चले जाते हैं कि सत्युग, द्वापर, त्रेतायुगों में पाप कम था, कलियुग पापका मूल है। मेरी समझ में तो भारत की अधोगति का कारण पुराण ही हैं ओ३म् शम्॥

श्रीमान् पण्डितजी—सेठ जी यह बातें सुनकर तो हमारी समझ में नहीं आता कि यह पुराण व्यास महाराज ने लिखे हों।

पण्डितजी व अन्य सज्जन पुरुष चलने की तय्यारीकर चलदिये।

आर्य्य सेठ ने पण्डितजी को नमस्ते और सज्जनों को यथा योग्य कहा।

पंडितजी—ने आशीर्वाद और अन्य महाशयों ने यथा योग्य की सब चल दिये।

सेठजी—अपने आवश्यक कार्य्य के लिये घरको गये।

॥ नवम परिच्छेद समाप्त ॥

दशम परिच्छेद।

श्रीमान् पण्डितजी—नियत समय पर आकर सुशोभित हुए और कई एक मान्यगण भी आगये परन्तु सेठजी अदालत में जाने के कारण उपस्थित न थे।

अन्य महाशयगणों ने यथा योग्य की पश्चात् श्रीमहाराज से मार्ग के आनन्द समाचार सुने इतने में सेठजी आगये।

सेठजी—हाथ जोड़कर श्रीमान् पण्डितजी को नमस्ते और अन्य महाशयगणों को यथा योग्य कहा।

पण्डितजीने आशीर्वाद और अन्यों ने यथायोग्य कहा।

इसी बीच लाला हरदेवप्रसादजी वा बाबू पन्नालाल जी वा लाला गणेशीलालजी वा लाला भगवानदास अत्तार वा बाबू छीतरमल वा बाबू तोताराम वा लाला डूंगरमलजी जो कासगंज आदि नगरों से सेठजीके यहां पधारे थे आकर विराजमान हुए और सब सज्जनों को नमस्ते की।

पण्डितजी—सेठजी अब आप त्रिदेवलीलाको संक्षेपसे वर्णन कीजिये।

आर्य्यसेठ—बहुत अच्छा आज मैं आपको संक्षेपके साथ त्रिदेवलीला को सुनाता हूं पंडितजी ध्यान पूर्वक सुन विचार कीजिये।

त्रिदेवलीला, ब्रह्मलीला।

श्रीमद्भागवतस्कन्द ३ अध्याय १२ में लिखा है कि ब्रह्माने अपनी पुत्री की (जो मनको हरती थी जिसकी कुछ इच्छा न थी हे विदुर!) इच्छा की॥

वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयंभूर्हरती मनः।
अकामां चकमे क्षत्तः सकाम इतिनः श्रुतम्॥

अधर्म में पिताकी बुद्धिको देखकर उनके पुत्र मरीचादिने उपदेश कर कहा।

तमधर्मे कृतमतिं विलोक्य पितरं सुताः।
मरीचि मुख्या मुनयो विश्रंभात् प्रत्यबोधयन्॥

कि हे पिता यह काम पहिले किसीने नहीं किया और न अन्य करेंगे आप कामके वश येटीके साथ प्रसंग करना चाहते हो।

नैतत् पूर्वैः कृतं त्वद्य न करिष्यंति चापरे।
यत् त्वं दुहितरं गच्छेरनिह्यांगजं प्रभुः।

मत्स्यपुराण अध्याय २ में लिखा है कि ब्रह्माजी ने अपनी पुत्री पर मोहित होकर उसको अपनी स्त्री बना देवताओं के सहस्र वर्ष प्रसङ्ग किया जिसके कारण उन के ऊपर की ओर पांचवां शिर उत्पन्न होगया जिसको उन्होंने जटाओं से ढक सृष्टि रचनेको कहा जैसा कि—

तत्सर्वनाशमगमत् स्वसुतोपगमेच्छया।
तेनोर्ध्ववक्त्रमभवत्पञ्चमं तस्य धीमतः॥
आविर्भवज्जटाभिश्च तद्वक्त्रञ्चावृणोत्प्रभुः।

वामनपुराण अध्याय ४६ में लिखा है कि यज्ञ से उत्पन्न कन्या को बहुत सुन्दरी देख ब्रह्माजी उसको मैथुनके लिये बुलाते हुए। और जिस महा पापसे ही उनका शिर कटगया।

तां दृष्ट्वाभिमतां ब्रह्मा मैथुनाया जुहावताम्।
तेन पापेन महता शिरोशीर्षत वेधसः॥

शिवपुराण—ज्ञान संहिता अध्याय ४६ में लिखा है।

पुरा ब्रह्माविमोहेन सरस्वत्या रूपमद्भुतम्।
दृष्ट्वाजगामतांपश्चात्तिष्ठेति विह्वलः स्वयम्॥
तद्वचनं तदा पुत्री श्रुत्वा कोपसमन्विता।
उवाच किं ब्रवीषित्वं मुखेनाऽशुभभाषिणा॥
ब्रवीषिचेद्विरुद्धं वै विभाषी भव सर्वदा।
तद्दिनां हि समारभ्य पंचमेन मुखेन च॥

ब्रह्मवैवर्त—पुराण कृष्णखण्ड अध्याय ३५ में लिखा है जब ब्रह्मा ने ऐसा पाप विचारा तब ऋषि ने ब्रह्मा से कहा कि ऐसे पापी नरक को जाते हैं

जिस को सुन उन्होंने योग द्वारा प्राण छोड़ दिये जिस को सुन पुत्रीने भी प्राणों को त्याग दिया इस पर नारायण आये और दोनों को जीवित कर दिया।

पच्यन्ते नरकेते च यावद्वै ब्रह्मणो वयः।
ब्रह्माशरीरं संत्यक्तुं क्रीड़या च समुद्यतः॥
योगेन भित्वा षट्चक्रं सर्वान्प्राणान्निरुध्य च।
बभूव हृदि कृत्वैकं ब्रह्मालीनश्च ब्रह्मणि॥
कन्या तातं मृतं दृष्ट्वा विलप्य च भृशं मुहुः।
योगेन देहन्तत्याज सा प्रलीना च ब्रह्मणि॥
नारायणो मदंशश्च कृपयागत्य सत्वरम्॥
ब्रह्माणं जीवयामास ब्रह्मज्ञानात्सुताञ्चताम्॥

विष्णुपुराण धर्मसंहिता—अध्याय १० में लिखा है कि ब्रह्मा पार्वती के विवाह में उन के चरणों को देख कर स्खलित होगये जिससे बालखिल्य ब्रह्मचारी उत्पन्न हुये।

गौर्यविवाहतेत्यादौ दृष्ट्वा प्रस्खलितोऽभवत्।
यत्र ते बालखिल्यास्तु जाताः सद्ब्रह्मचारिणः॥

ऐसाही **गणेशपुराण** अध्याय ३३ में लिखा है।

श्रीमद्भागवत में लिखा है कि जब श्रीकृष्ण महाराज वन में गाय चराने जाते थे तो एक दिन ब्रह्मा गायों को चुरा लेगये।

पद्मपुराण पाताल खण्ड अध्याय २० में लिखा है कि ब्रह्माजी ने प्रजाओं को नाश युक्त देखा इस से उनके तारने के लिये अपने गण्डस्थलसे अनेक जल उत्पन्न करके पापनाशिनी गण्डकी नदी को बनाया।१४॥

पुरादृष्ट्वा प्रजानाथा प्रजाः सर्वाणि पावनीः।
स्वगंडविप्रुषोनेक पापघ्नीं सृष्टवानिमाम्॥

और **सृष्टिखण्ड**—अ० १७ से प्रकट होता है कि ब्रह्माजी ने पुष्करमें यज्ञ किया उस समय सावित्री के आने में देर हुई तब इन्द्र ने एक गोप कन्या को ला गान्धर्व विवाह कर यज्ञ में पिठला कर कार्य्य किया। तिसके पश्चात् सावित्री देवी देवताओं की देवियों के साथ यज्ञ स्थल में आई और उपरोक्त कार्य्य को देख कर उन्होंने कहा कि तुमने काम के वशीभूत होकर गोप कन्या को विठला कर हम को लज्जित किया भला अब मैं किस भांति सखियों को मुंह दिखलाऊंगी। तब ब्रह्माजी ने कहा कि काल बीता जाता था और तुम्हारे आने में देर हुई तब इन्द्र ने यह स्त्री लादी। विष्णु भगवान ने अनुमोदन किया जिस के कारण हमने इस को गृहण किया। अब हमारे अपराध को क्षमा करो। अब हम तुम्हारा कोई अपराध न करेंगे तुम्हारे चरणों पड़ते हैं तब उन्होंने ब्रह्माजी को श्राप दिया कि जाओ **आज से तुम्हारी पूजा कार्तिककी पूर्णमासी के अतिरिक्त न होगी।**

नैवते ब्राह्मणाः पूजां करिष्यंति कदाचन।
ऋत तु कार्तिकीमकां पूजां सांवत्सरीं तव॥
करिष्यंति द्विजाः सर्वे मर्त्यानान्यत्र भूतले॥

शिवपुराण विद्येश्वरी संहिता अध्याय ६ में लिखा है एक बार विष्णु में अपने २ महत्व पर झगड़ा हुआ अर्थात् ब्रह्मा कहते थे हम सब से प्रधान हैं इस पर इन दोनों में घोर युद्ध हुआ तब देवता महादेव जी के पास गये, तब शिवजी आकर दोनों के बीच में एक स्तंभ को इतना बढ़ाया जो आकाश और पाताल में पूर्ण होगया। इसके अनन्तर शिव ने कहा कि तुम दोनों में से जो इस का अन्त देख आवेगा वही जगत् में सब देवों में बड़ा अर्थात् पूज्य समझा जावेगा। यह सुन ब्रह्मा ऊपर को विष्णु नीचे को गये जब सैकड़ों वर्ष जाते २ भी उनको पता न मिला तब विष्णु ने आकर सत्य कह दिया कि मुझ को इसका पता नहीं मिला और ब्रह्माजी ने आकर झूंठ बोला कि मैं अन्त तक पहुँच गया। देखो यह केतकी का फूल उसके ऊपर रक्खा था तब महादेवजी ने विष्णु से कहा कि मैं तुमसे प्रसन्न हूं क्योंकि ईश्वरत्व की इच्छा होने पर भी तुमने झूंठ नहीं बोला इस लिये आज से तुम्हारी मूर्तिकी पूजा जगत में होगी।

इतः परं ते पृथगात्मनश्च क्षेत्रप्रतिष्ठोत्सवपूजनं च।

और ब्रह्माजी से कहा कि तुमने मिथ्या बोला इस कारण तुम्हारी पूजा नहीं होगी ।

नातस्ते सत्कृतिर्लोके भूयास्स्थानोत्सवादिकम्

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण कृष्ण जन्म खण्ड अध्याय ३२ में लिखा है कि मोहनी कामातुर हो ब्रह्मा के समीप गई ब्रह्मा ने इस कारण निषेध किया कि तू विष्णु की स्त्रियां है ।

तब मोहिनी ने ब्रह्माजी को शाप दिया कि जाओ तुम्हारी पूजा न होगी तब ब्रह्माजी ने वैकुण्ठ में नारायण के पास जाकर सब वृतान्त कह सुनाया तब नारायणजी ने ब्रह्मा से कहा कि तुम गङ्गा स्नान करो शाप दूर हो जायगा तुम्हारी आगे पृथक् पूजा न होगी किन्तु अन्य देवताओं की पूजा के साथ तुम्हारी पूजा होगी ।

यदन्यदेवपूजायां तवपूजा भविष्यति ।

वाराहपुराण अध्याय ११३ में लिखा है एक समय ब्रह्माजी जंभाई लेते थे उस समय हयग्रीव नामक दैत्य ब्रह्मा के मुखमें से वेदों को निकाल कर रसातल को लेगया ।

वेदेषु चैव नष्टेषु मत्स्यो भूत्वा रसातलम् ।
प्रविश्यतान थोत्कृष्य ब्रह्मणे दत्तवानसि ॥

विष्णु लीला ।

पद्मपुराण षष्ठ उत्तर खण्ड अध्याय १५ में लिखा है विष्णु महाराज जालंधर की स्त्री के समीप उस का रूप बनाकर गये और उस से प्रसंग कर लक्ष्मी के प्रेम से अधिक सुख माना और वृन्दा ने वियोग का सब दुःख माधव से दूर किया ।

प्रियंगाढं समालिंग्य चुचुम्बरति लोलुपा ।
मोक्षादप्यधिक सौख्यं वृंदामोहनसंभवम् ॥
येननारायणो देवो लक्ष्मीप्रेमरसाधिकम् ।

वृंदाावियोगजं दुःखं विनोदयति माधवे ॥

जब वृन्दा को उनका कपट मालूम हुआ तब उसने शाप दिया कि जिस भांति माया के रूप से मैं मोहित हुई हूं उसी प्रकार आप की स्त्री को कोई माया से तपस्वी रूप होकर हरेगा।

अहं मोहं यथा नीता त्वया माया तपस्विना ।
तथा तव बधूं माया तपस्वी कोपिनेष्यति ॥

अध्याय १०३। जब वृन्दा अग्नि में जल गई तो भगवान् बारंबार स्मरण कर चिता की भस्म की रजके निकट ही स्थित होगये मुनि और सिद्धों के समूह के समझाने पर भी शांति को प्राप्त न हुये।

ततो हरिस्तामनुसंस्मरन्मुहुर्वृन्दाचिताभस्मरजोवगुंठितः । तत्रैवतस्थौमुनिसिद्धसंघैः प्रबोध्यमानोपि ययौ न शान्तिम् ॥

सृष्टिखंड अध्याय ४ में लिखा है कि जब भगवान् ने समुद्र मथन किया और अमृत निकाला और उस को जब दैत्यों ने ले लिया तब भगवान् ने एक स्वरूपा स्त्री का रूप धारण कर दैत्यों को लुभाया जब वह मोहित हो गये तो उस स्त्री ने कहा कि कमण्डलु हम को देदो मैं सदा तुम्हारे घर में ही रहा करूंगी तब दैत्यों ने उस रूपवती पर मोहित होकर उस अमृत के पात्र को दे दिया तब वह स्त्री अमृत का पात्र देवताओं को देकर अंतर्द्धान होगई।

माययालोभयित्वा तु विष्णुः स्त्रीरूपसंश्रयः ।
आगत्य दानवान्प्राह दीयतां मे कमंडलुः ॥
युष्माकं वशगाभूत्वा स्थास्यामिभवतांगृहे ।
तां दृष्ट्वा रूपसम्पन्नां नारीत्रैलोक्यसुन्दरीम् ॥
प्रार्थयामासुरवपुषं लोभोपहतचेतसः ।
दत्त्वा मृतं तदा तस्यै ततोपश्यन्त तेग्रतः ॥

पातालखंड अध्याय ७४ में लिखा है कि एक समय ब्रह्मा नारद

मुनि के साथ विष्णु के समीप गये और उनसे नारद के प्रश्न को कहा तब विष्णु महाराज ने ब्राह्मण से कहा कि तुम इन को अमृतसर में स्नान कराओ ब्रह्मा ने ऐसाही किया वह स्नान करते ही अपूर्व स्त्री रूप होगए ॥

तत्क्षणात्तत्सरःपारे योषितांसविधेऽभवम् ।
सर्वलक्षणसम्पन्ना योषिद्रूपातिविस्मिता ॥

जिन को देख कर बहुधा स्त्रियां वहां आकर पूंछने लगीं कि तुम कौन हो ? कहां से आई हो ? यह सुन वह विस्मित होगये । इतने में ललिता सखी आई और उसने चौदह अक्षर का मंत्र दिया । जिसको ग्रहण करते ही हम वहां पहुँचे जहाँ सनातन कृष्णचन्द्र थे । जिन्होंने मुझ को देख कर कहा कि हे प्रिये ! यहां आओ व भक्ति से हमारे साथ साथ आलिंगन करो । ऐसा कई एक वर्ष तक रात दिन क्रीड़ा करते रहे । उसके पीछे उन्होंने राधिका से कहा यह तुम्हारी प्रकृति है जो नारद रूपिणी स्त्री होकर आई है सो इस को अमृतसर में स्नान कराओ स्नान करते ही हम फिर नारद होगये और स्त्री का रूप जाता रहा और कृष्ण के गुण गाने लगे ॥

ततो निमज्जनादेव नारदोहमुपागतः ।
वीणाहस्तो गानपरस्तद्रहस्यंमुहुर्मुदा ॥

और अध्याय ७३ में विष्णु भगवान् के अवतार श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुनको स्त्री बना उनके साथ विहार कर फिर उनको अपने रूप में कर दिया ।

———:o:———

राजा अम्बरीष की पुत्री को स्वयंवर में से नारद और पर्वत मुनि को धोका देकर विष्णु का लेजाना ।

लिङ्गपुराण अध्याय ५ में लिखा है कि राजा त्रिशंकुकी संती बड़ी पतिव्रता थी जिसको दशहजार वर्ष तक विष्णुकी सेवा करते व्यतीत होगये एक दिन एकादशीका व्रत और नारायण द्वादशी के दिन भगवान् के मन्दिर में दोनों ने शयन किया । उससे नारायण ने स्वप्नमें कहा कि तू क्या चाहती है उसने कहा कि मैं ऐसा पुत्र चाहती हूं कि जो आपका परमभक्त हो यह सुन एक फल उसको दिया रानी ने प्रातःकाल उठ सब वृत्तान्त राजा से कहा फिर पतिकी आज्ञा पा फलको भक्षण करलिया और समय पूरा होनेपर पुत्र उत्पन्न हुआ। जिस

का संस्कार प्रसन्नता के साथ कर उसका नाम अम्बरीप रक्खा जो बड़ा विष्णुका भक्त हुआ पिता त्रिशंकु अम्बरीषको राज्य दे परलोक सिधारा। अम्बरीष राज्य काज मन्त्रियों को दे तप करने गया एक२ हजार वर्ष तक ब्रह्मा, विष्णु, शिव स्वरूप से तप करता रहा। इस बीच नारायणने इन्द्रका रूप धर ऐरावतपर चढ़ अम्बरीपके निकट आ कहा कि मैं इन्द्र हूं। वर मांग। राजाने कहा कि मैंने तेरी प्रसन्नताके लिये तप नहीं किया न तुझसे वर चाहता हूं मेरे स्वामी नारायण हैं जब उनकी कृपा होगी तब वर मांगूंगा तो हँसकर भगवान्ने अपना रूप प्रकट किया तब तो अम्बरीप भक्तिसे प्रणाम कर स्तुति करने लगा। जिसको सुन भगवान्ने कहा कि तेरी इच्छा हो सो वर मांग। तब राजाने कहा कि जैसे आप शिवभक्त हैं वैसा मैं आपका रहूं। सब जगत्को वैष्णव बनाऊं। राज्य और यज्ञ करूं। तब भगवान्ने कहा कि ऐसा ही होगा। यह सुदर्शनचक्र तेरे राज्य की प्रत्येक प्रकार से रक्षा करेगा यह कह भगवान् अन्तर्द्धान होगये। राजा अम्बरीप भी प्रसन्न हो भगवान्को प्रणामकर अपनी राजधानी अयोध्या में आ धर्मराज करने लगा। घर २ भगवान्की पूजा व वेदध्वनि से होने लगी यज्ञोंकी धूम मच गई। आनन्द से राज्य करते हुए कुछ काल व्यतीत होगया तब राजाके शुभलक्षणों से युक्त एक कन्या उत्पन्न हुई जिसके जन्मके समय राजाने बड़ा उत्सव मनाया और उसका नाम श्रीमती रक्खा। जब वह वरने योग्य हुई तो राजा को उसके विवाहकी चिन्ता हुई इतने में नारद और पर्वतमुनि आये जिनका राजा ने बड़ा आदर और सत्कारकर आसनपर बिठाया। उन्होंने भी श्रीमती को देखा तो मोहित हो राजासे पूछा कि यह किसकी कन्या है राजाने सब हाल कहा तब नारद और पर्वत मुनिने अपने २ मनमें मिलनेकी इच्छाकी फिर नारदजीने राजा को पृथक् लेजाकर कहा कि हमारे साथ इसका विवाह कर दो इसी भांति पर्वत मुनिने अपना अभिप्राय प्रकट किया तब राजाने दोनों मुनियोंसे कहा कि श्रीमती तो एक है आप दोनों इसकी इच्छा प्रकट करते हैं फिर भला मैं किसके साथ विवाह करूं इसलिये अब मेरी यह इच्छा है कि पुत्री तुम दोनोंमें से जिसके साथ चाहे विवाह करले जिसको दोनोंने स्वीकार किया और कहा कि कल जब हम आवेंगे तब ऐसाही करना। इतना कह दोनों चलेगये। परन्तु थोड़ी दूर जाकर नारदने पर्वत मुनिका साथ छोड़दिया और विष्णु लोकको गये जहां विष्णुको प्रणाम कर कहा कि आपसे एकान्तमें मुझको कुछ कहना है, वह उठकर अलग होगये तब उन्होंने कहा कि अम्बरीषके श्रीमती नामी एक रूपवती कन्या है जिस

को मैंने और पर्वतमुनि दोनों ने मांगा राजाने कहा कि पुत्री जिसको स्वीकार करे उसेही मैं देदूंगा कल स्वयंवर होगा इसलिये पर्वतका स्वरूप बन्दरकासा कर दीजिये। हम आपके भक्त हैं भगवान् ने कहा कि ऐसा ही होगा। आप जाइये। नारदमुनि भगवान् को प्रणाम कर अयोध्या गये। इसी अवसर में, पर्वतमुनि भी वहां पहुँचे और भगवान् से एकान्तमें प्रार्थनाकी कि नारदका मुख लंगूरकासा दीख पड़े क्योंकि हम आपके भक्त हैं भगवान्ने पर्वतमुनि की प्रार्थना सुनकर कहा कि ऐसा ही होगा तुम भी अयोध्याको जाओ परन्तु यह समाचार नारदजी से न कहना। पर्वतमुनि अयोध्या में आये जहां उत्तम प्रकार से सभामण्डप बनाया था कन्या भी सब प्रकारसे श्रृंगार किये युवतियोंके संग स्वयंवर सभा में आई जहां दोनों मुनि भी आये। उनको आसन दिया। फिर श्रीमती से कहा कि इन दोनों में से जिसकी इच्छा हो उसके गले में जयमाला डाल दे। राजा की आज्ञा पाय दोनों मुनियों के समीप जाकर देखा तो एकका मुख बन्दर और दूसरे का लंगूरसा दीख पड़ा। तब उसने जाना कि यह दोनों ये मुनि नहीं हैं। हां तीसरा आदमी १६ वर्षकी अवस्था का जो श्यामवर्ण सब भूषण धारण किये, दीर्घ भुजा, ऊंची छाती, कमलके से नेत्र अति सुन्दर दीख पड़ा। तब उन दोनोंसे पूंछने पर जान पड़ा कोई मायावी पुरुष है हमारी जानमें वह बड़ा तस्कर विष्णु इस उत्तम कन्याको हरने तो नहीं आया। जो उसके मनमें कपट न होता तो हम दोनोंके मुख बन्दर और लंगूरके क्यों बनाता। इतने में राजाने कहा कि महाराज आपके मुख देख कन्या भयभीत होती है तब दोनोंने कहा कि तेरा ही सब प्रपंच है इस लिये तू कहदे कि एकके गलेमें माला डाल दे। राजा ने कहा, श्रीमती फिर उठी उसको फिर वही तीसरी मूर्ति सुन्दर दीख पड़ी और यह दोनों वैसे ही दीखे। तब श्रीमतीने निर्भय हो उस तीसरे के कंठमें माला डालदी और वह दिव्य पुरुष कन्याको अपने संग ले अंतर्धान होगया। तब तो सभाके लोग कहने लगे कि श्रीमतीने भगवान्का आराधन बहुत किया इसलिये विष्णु भगवान् उसके पति हुये। फिर दोनों मुनि अपना तिरस्कार देख, विष्णुलोकको गये। मुनियोंको आता जान श्रीमती से कहा कि तुम गुप्त होजाओ। तब वह छिपगई दोनों मुनि वहां पहुँचे प्रणाम किया। भगवान्ने आदरपूर्वक आसन दिया। फिर नारदजी ने कहा कि आपने हमारे साथ कपट किया और उस कन्या को आपने हरलिया भगवान्ने कानों पर हाथ धरे और कहा कि हे मुनीश्वरो! मुझको इस वृत्तान्तकी खबर भी नहीं कि आप दोनों क्या करते फिरते हैं। यह सुन नारदजी

ने भगवान् के कानमें कहा कि हमारे कहने से आपने पर्वतका मुख तो बन्दरका सा बनादिया परन्तु हमारा मुख लंगूरकासा क्यों बनादिया। तब उन्होंने नारद के कानमें कहा कि तुम्हारे पीछे पर्वतमुनि आये और तुम्हारे समान उन्होंने हमसे प्रार्थनाकी तब हमने आपका लंगूरकासा बना दिया इतना कह भगवान् बोलेकि हे मुनिश्वरो हमको आप दोनों तुल्य ही हैं इसलिये दोनोंका वचन मानना पड़ा इसमें हमारा कौन अपराध है। यह सुन नारदने कहा कि जो आप ऐसा कहते हैं तो यह दोनों भुजाओं में धनुष बाण धारे पुरुष कौन था जो दोनों के बीच में श्रीमती को दीख पड़ा और उसको उड़ालाया। तब भगवान्ने कहा कि महाराज अनेक मायावी पुरुष जगत् में फिरते हैं क्या जाने श्रीमती को कौन हर लाया हम तो शपथ खाकर कहते हैं कि आप दोनों की आज्ञा से दोनों के मुख बनाये और हमारी चार भुजा हैं शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारते हैं, यह भी आप जानते हैं कि हमारी कुछ इच्छा उस कन्या के लिए नहीं थी। इस भाँति भगवान् के वचन सुन दोनों मुनि बोले कि ठीक है इसमें आप का कुछ दोष नहीं यह सब उस दुष्ट राजा की माया है। इतना कह दोनों भगवान् को प्रणाम कर वहाँ से चल दिये। फिर राजाके समीप आये और क्रोधसे कहने लगे तू बड़ा दुष्ट है तै ने हम दोनों को बुलाया और कन्या किसी तीसरे को देदी इस लिये तमोगुण तेरी बुद्धि को ढाक लेगा जिस से तू अपनी आत्मा को न जानेगा। इतना कहते ही एक अंधकार का पुञ्ज वहाँ उत्पन्न हुआ और राजा की ओर चला तब सुदर्शन चक्र ने प्रकट हो उस अन्धकार को हटाया और वह अन्धकार नारद और पर्वत की ओर चला और सुदर्शन चक्र भी दोनों मुनियों के पीछे लगा मुनि भयभीत हो वहाँ से भागे लोकालोक पर्वत पर्य्यन्त भागते फिरे परन्तु सुदर्शन चक्र और उस अन्धकार ने उनका पीछा न छोड़ा तब तो अति व्याकुल हो भगवान् की शरण में गये और कहा कि हे प्रभो! हमारी रक्षा करो। राजकन्या के निमित्त हमारी यह दुर्दशा हुई। तब भगवान् ने विचारा कि यह दोनों हमारे भक्त हैं और अम्बरीष भी हमारा ही भक्त है इसलिये हमको तीनोंकी रक्षा उचित है यह विचार सुदर्शनचक्र और अन्धकारको निवारण किया और अन्धकारसे कहा कि सुदर्शनचक्र हमारी आज्ञासे राजाकी रक्षा करता है इसलिये यह निष्फल नहीं होसका और ऋषि शाप भी वृथा न होना चाहिये इस कारण अम्बरीष के वंशमें बड़ा धर्मात्मा राजा दशरथ होगा उसके पुत्र हम होंगे और हमारा नाम **राम** होगा और हमारी दक्षिण भुजा भरत, वाम भुजा शत्रुघ्न,

और शेषका अवतार लक्ष्मण, ये तीन हमारे भ्राता होंगे तब हमारी भार्य्या सीता को रावण हरेगा उस समय तू हमारे समीप आजाना हम तुझको ग्रहण करेंगे। अब मुनियों का पीछा छोड़दे इतना भगवान्‌का वचन सुन अन्कार नाश को प्राप्त भया और सुदर्शनचक्र अपने स्थानको गया दोनों मुनि भी बड़े भयसे छूटे भगवान्‌को प्रणामकर वहांसे चले और परस्पर कहने लगे कि अब हम जन्मपर्य्यन्त किसी कन्यासे विवाहकी इच्छा न करेंगे। कुछ कालके पीछे नारद पर्वतपर विष्णु भगवान् की सब माया जान भगवान्‌से विमुख हो शिवभक्त होगये।

नारदः पर्वतश्चैव चिरं ज्ञात्वा विचेष्टितम्।
मायां विष्णोर्विनिन्द्यैव रुद्रभक्तौ बभूवतुः ॥ १५६ ॥

ब्रह्मवैवर्तपुराण—प्रकृतिखण्डमें लिखा है कि विष्णु महाराज की लक्ष्मी, गङ्गा और सरस्वती यह तीन स्त्रियां थीं। एकबार गङ्गा क्षणमात्र विष्णु को देखकर हँसी और कटाक्ष किये जिसको देख सरस्वतीने गंगाको शाप दिया कि तू नदीरूप होजा। इसी प्रकार गंगाने सरस्वतीको शाप दिया कि कलियुगमें तू नदीरूप होजा। इतने में विष्णुजी जो प्रथम वहांसे उठकर चलेगये थे। आये और सबसे कहा कि बहुतसी स्त्रियोंसे संसारमें निन्दा होती है और वह नरकको जाता है। इसलिये अब एक सुशीला लक्ष्मी ही को अपने पास रहने दूंगा। गंगा तू महादेव और सरस्वती तुम ब्रह्माके पास जाओ। तब गंगाने विष्णुसे कहा कि आपने बिना अपराधके ही मुझको त्यागन किया इसलिये मैं अपने शरीर को त्याग दूंगी और तुम निर्दोषीके मा... वाले कहलाओगे और जो मनुष्य निर्दोषी स्त्री को त्यागता है वह कल्पभर नरकमें रहता है। अ० अ० ६॥

निर्दोषकामिनीं त्यागं करोति यो जनाभवे।
सयाति नरकं कल्पं किं ते सर्वेश्वरस्य वा ॥ ७३ ॥

देवीभागवत—स्कन्द ९ अध्याय २२ में लिखा है कि महादेव जी का शङ्खचूड़ दैत्यसे संग्राम होरहा था और दोनों सौ वर्षतक संग्राम करते रहे परन्तु एक भी न हारा उस समय विष्णु वृद्ध ब्राह्मण का रूप धरकर शङ्खचूड़के पास गये और कहा कि आप सब सम्पदाओं के दाता हैं। मुझको एक वस्तुकी इच्छा है तुम प्रथम देने की प्रतिज्ञा करलो। दैत्यने करली। तब वृद्ध ब्राह्मणने कहा हम

कवच चाहते हैं उसने देदिया। फिर विष्णु महाराज ने शङ्खचूड़का स्वरूप बना उसकी स्त्री तुलसीके निकट जा प्रसङ्ग किया।

शंखचूडस्य रूपेण जगाम तुलसींप्रति ।

गत्वा तस्यां मायया च वीर्याधानं चकारसः ॥

श्रीमान् और भी सुनिये मुर नाम दैत्यसे जब आप संग्राममें हार पहाड़की एक गुफा में छिपकर सो रहे तिसपर दैत्य पहुँचा जो इनकी खोजमें था इतने में विष्णु महाराजके शरीरसे एक कन्या उत्पन्न होगई और उसने मुरको मारडाला। इतने में इनकी नींद गई जागे। मुरको मरा देख पूछने लगे इसको किसने मारा कन्याने कहा मैंने तब उसको प्रसन्न हो वरदान दिये॥ कहिये यही सर्वशक्तिमानता के कर्तव्य हैं तिसपर इनके कानके मैलसे मधुकैटभ नाम दो दैत्य भी उत्पन्न हुये थे क्या यह हँसी नहीं है।

श्रीमान् पण्डित जी पुराणों में लिखा है कि समुद्र मथने के समय असुरों से अमृत देने की प्रतिज्ञा की और असुर को अमृत पीते देखा तो चक्र से उस का शिर काट डाला। वामनरूप धारण कर राजा बलि से यज्ञ करने के लिए अग्नि की रक्षा के अर्थ तीन पैर कुटिया बनाने को मांग सब पृथ्वी लेली।

श्रीमद्भागवत स्कंद १० उत्तरार्द्ध अध्याय ८८ में लिखा है कि एक वकासुर दैत्य ने शिवजी का आराधन कर शिव को प्रसन्न कर यह वर पालिया कि मैं जिसके शिर पर हाथ धरूं वह तुरंत भस्म होजाय। दैत्य ने पार्वती के लेने की इच्छा कर शिवजी के शिर पर हाथ धरना विचारा यह जान वह सब ओर भागे पर कहीं किसी ने रक्षा न की तब वैकुन्ठनाथ के पास गये तब वह उठ दैत्य के पास गये और कहा कि यदि शिव ऐसा वर देने वाला सच्चा है तो दक्ष से शापित क्यों हुये हम तो यह बात झूठी समझते हैं यदि सच्ची है तो प्रथम अपने शिर पर हाथ रख कर देखो यह सुन ज्योंही उसने अपने शिर पर हाथ धरा त्यों ही वह भस्म हो गया कहिये यह काम साक्षात् परमेश्वर को करना चाहिये जो शिव के लिये झूठ बोला और उस से विश्वासघात किया॥

लिङ्गपुराण अध्याय ९६ में लिखा है कि प्रह्लाद की रक्षा के लिये जब विष्णु भगवान् ने नृसिंहावतार धारण कर हिरण्यकश्यप को मारा उस

समय उन को बड़ा ही क्रोध था इस की शान्ति के लिये देवतों ने स्तुति की परन्तु शान्ति न हुई तब वीरभद्र ने आकर बहुत कुछ स्तुति की तब भी शान्ति न हुई वरन् वीरभद्र को मारने के लिये उठे उसी समय शिव महाराज ने शरभ पक्षी का रूप धारण कर अपने पञ्जे और चोंच और पह्वों से नृसिंह को आकाश में उठा कर ले गया और खूब पटक २ मारा तब देवतों ने बहुत स्तुति कर कहा कि आज छोड़ दो जैसा कि:—

उत्क्षिप्योत्क्षिप्य संगृह्य निपात्य च निपात्य च ।
उड्डीयोड्डीय भगवान् पक्षाघातविमोहितम् ॥
हरिं हरन्तवृषभं विश्वेसानंतमश्विरम् ।
अनुयान्ति सुराः सर्वे नमो वाक्येन तुष्टुवुः ॥

महादेव लीला ।

श्री महाराज महादेव की लीली का वर्णन करना भी कठिन है देखिये पद्मपुराण सृष्टिखण्ड अ० १७ में लिखा है कि ब्रह्मा जी का यज्ञ होरहा था तो महादेवजी यज्ञशाला में भिक्षा मांगने के लिये मञ्जुरूप धारण किये था एक बड़ी भारी खोपड़ी हाथ में लिये ऋत्विज् के समीप आकर बैठ गये। तब वेद-वादी ब्राह्मणों ने उन से कहा कि तुम ऐसा निन्दित भेष बनावे यहां यज्ञशाला में कैसे चले आये तब उनको बहुत धुधुकारा वा निंदा की, और खेदा भी पर वे वहाँ से न उठे। तब हँस कर महादेवजी उन ब्राह्मणों से बोले कि हे ब्राह्मणो! सब को संतुष्ट करते ब्रह्माजी के यज्ञ में हम को छोड़ और कोई नहीं निकाला जाता हम कैसे निकाले जाते हैं तब ब्राह्मणों ने कहा कि अच्छा भोजन कर लो तब चले जाना उन्होंने कहा अच्छा तब लाकर अन्न दिया। उन्होंने कपाल में धर कर भोजन कर ब्राह्मणों से कहा कि हम अब स्नान के लिये पुष्कर को जाते हैं यह चले गए। तब ब्राह्मणों ने कहा कि कपाल यहाँ हो धरा है। हम लोग क्योंकर कार्य्य करें क्योंकि इस के रहने से अपवित्रता होती है। तब उन ब्राह्मणों में से एक ने उठाकर बाहर फेंक दिया तब उस को दूसरा और दिखलाई दिया, फिर तीसरा दिखलाई दिया उसको फेंका इसी प्रकार हजार तक फेंके।

जब अन्त न मिला तब सब पुष्कर में स्तुति करने के लिए गये देखा, कि महादेव जी स्नान कर कुछ मन्त्र जप रहे थे । सबने महादेव की स्तुति की तब प्रसन्न होकर कहा कि जाओ, यज्ञ करो हमने कपाल उठा लिया और ब्रह्मा से कहा कि तुमभी कुछ वर मांगो । तब ब्रह्मा ने कहा कि हम यज्ञमें दीक्षित हैं हमी सबको देने हैं चाहे सो आपही मांग लीजे । तब महादेवजी ने कहा कि अच्छा किसी समय हमी आप से मांग लेंगे । इतना कह सब चले गये । जब मन्वन्तर बीत गया और महादेवजी घूमते २ दूसरे मन्वन्तर में वहाँ पहुँचे तो ब्रह्मा यज्ञ कर रहे थे तब फिर उसी भेष में नग्न अपने गुप्त स्थान को बायें हाथ से थामे ब्रह्माजी की सभा में आये तब सब उनको देख कर हँसने लगे कोई उन्मत्त समझ मिट्टी धूल फेंकने लगे । किसी ने पकड़ा किसी ने जटा पकड़ कर घसीटा । किसी ने कहा कि यह व्रत तुमको किसने सिखलाया है । देखो यहाँ सुन्दर स्त्रियां बैठी हैं तिस पर तुम इस भांति चले आये हो । तब महादेवजी ने कहा कि हमारा शिश्न तो ब्रह्मा का रूप है, और स्त्रियों के गुप्त स्थान सब जनार्दन के रूप हैं । तुम लोग हमारा वीर्य्य हो, फिर हमको वृथा क्यों क्लेश देते हो हमीने पुत्र उत्पन्न किया है व उस पुत्र में हमी उत्पन्न हैं । ६३ । ६४ ।

इसी से हमारी की हुई सृष्टि है व हमी ने भार्य्या हिमालयके यहाँ उत्पन्न की उसमें उमा रुद्रों को दी । बताओ वह किसकी कन्या है । तुम सब इस बात को भी जान लो कि हमारी स्त्री को ब्रह्मा ने नहीं उत्पन्न किया न विष्णुभगवान् ने यह भी जान लो कि हमीने ब्रह्मा का शिर काट डाला था फिर तुम लोग ब्रह्माकी उपासना कैसे करते हो और हमको मारते हो । इतना कहने पर भी ब्राह्मणों ने शिव का मारना बन्द नहीं किया । तबशङ्कर ने फिर कहा तिसपर और भी तङ्ग किया जिस पर शिवजी ने उनको शाप दिया कि कलियुग में वेदवर्जित हो जाओगे बड़ी २ जटा रखाओगे यज्ञ कर्म से भ्रष्ट होजाओगे व पर स्त्रियों के संग भोग करोगे अब माता पिता से रहित हो जाओगे तो वेश्याओं की दूतता करोगे । किसी पुत्र को अपने पिता का धन न मिलेगा और न किसी का पुत्र पण्डित होगा रुद्र के शिवालय की भिक्षा लोगे शूद्रों के श्राद्ध में भोजन करोगे । परस्पर विरोध रहेगा बहुधा धर्म रहित हो जाएंगे और जिन ब्राह्मणों ने हमको दुःखी नहीं किया उनके घरों में धन, धान्य पूर्ण रहेगा । घर की स्त्रियां सुशीलादि गुणों से युक्त होंगी ऐसा कह वह अन्तर्द्धान होगये ।

दण्डैश्चापि च कीलैश्च उन्मत्तवेषधारिणम् ।
पीड्यमानस्ततस्तैस्तु द्विजैः कोपमथागमत् ॥
ततो देवेनते शप्ता यूयं वेदविवर्जितः ।
ऊर्ध्वजटाः क्रतुभ्रष्टाः परदारोपसेविनः ॥
वेश्यायां तु रता द्यूते पितृमातृविवर्जितः ।
न पुत्रः पैतृकं वित्तं विद्यांवापि गमिष्यति ॥
सर्वे च मोहिताः सन्तु सर्वेन्द्रिय विवर्जितः ।
रौद्रींभिक्षां समश्नंतु परपिंडोपजीविनः ॥
आत्मानं वर्तयंतश्च निर्ममा धर्मवर्जितः ।
कृपायितातुयैर्विप्रैरुन्मत्ते मयि सांप्रतम् ॥
तेषां धनं च पुत्राश्च दासीदासमजाविकम् ।
कुलोत्पन्नाश्च वै नार्यो मयि तुष्टे भवन्विह ॥
एवंशापं ववरं चैव दत्वां तर्द्धानमीश्वरः ।

पद्मपुराण सृष्टिखण्ड अ० ५ में दक्ष ने पार्वती से कहा है कि जिस कारण तुम्हारे पति का निमन्त्र हमने नहीं किया।

सुनो एक तो वे मनुष्य की खोपड़ी ही को पात्र बनाये लिये रहते हैं, गज चर्म ओढ़ते, चिता की भस्म लगाते, त्रिशूल धारण करते, दण्ड लिए रहते, नङ्ग सदा रहते, श्मशानभूमि में निवास करते, अंगों में विभूति लगाते कि कोई भी अङ्ग बाक़ी न रखते, व्याघ्र का चर्म्म ओढ़ते हैं, हाथी का भी चर्म्म ओढ़ते हैं, जिस से रक्त के बिन्दु टपकते रहते हैं, मरे हुए मनुष्यों की कपालों की माला तो गले में धारण किये ही रहते हैं।

हाथ में एक मनुष्य की मांजर बिना मांस की रहती है, एक कन्था ऊपर से और ओढ़े रहते हैं, सर्प का लँगोट बनाय अपना अच्छादित करते, सर्पों के राजा वासुकी जी को ही यज्ञोपवीत बनाये रहते। फिर ऐसा रूप अमङ्गल बनाये पृथ्वी पर घूमा करते यह भी नहीं कि कहीं छिप कर बैठें आप तो आप। अपने संग हजारों भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, ब्रह्मराक्षसादि भी सब नङ्ग धड़ङ्ग व त्रिशूल धारण किये तीन नेत्रधारी सदा गाते बजाते और नाचते रहते

हैं। उनको देखकर हमको लज्जा होती है। कि लोग कहेंगे कि इनके ऐसेही दामाद हैं वे यहां सब देवताओं के निकट कैसे बैठ सकते हैं इस प्रकार भेष बनाये वे किसी ऐसे स्थान पर बैठने के योग्य कब हैं। वत्से! इन्हीं दोषों के कारण व सब लोगों की लज्जा से तुम्हारे पति को निमंत्रण नहीं दिया।

येनाद्य कारणेनेह पतिस्तेन निमंत्रिता।
कपालपात्र धृक्चर्मी भस्मावृततनुस्तथा॥
शूलीमुण्डी च नग्नश्च श्मशने रमते सदा।
विभूत्यांगानि सर्वाणि परिमार्ष्टि च नित्यशः॥
व्याघ्रचर्मपराधीनो हस्तिचर्मपरिच्छदः।
कपालमालां शिरसि खट्वांगं च करेस्थितं॥
कव्यांवैगोनसंवध्वा लिंगेऽस्थ्यांवलयं तथा।
पन्नगानां तु राजानमुपवीतं च वासुकिम्॥

:०:

दक्ष के यज्ञ को शिवका विध्वंस करना।

दक्ष के यज्ञ में जो देवता और मुनि थे सबको शिवजी ने दण्ड किया सती के वियोग से खिन्न हो दक्षका यज्ञ नाश करने की आज्ञा शिवजी ने वीरभद्र को दी वह शिवजी की आज्ञा पाय अपने रोमों से करोड़ों गण उत्पन्न कर सबको साथ ले, रथ पर बैठ ब्रह्मा जीको सारथी बनाय दक्षके यज्ञको जाते भये, **कनखल** में दक्ष का यज्ञ होरहा था वहां आकर कहा देवता मुनियों सहित तेरे नाश को मुझे शिवजी ने भेजा है। इतना कह यज्ञशाला में आग लगवादी सब गण क्रोध कर यज्ञ स्तंभों को उखाड़ने लगे। इन्द्रकी भुजाका स्तंभ चन्द्रमा को मार गिराया फिर वीरभद्र ने इन्द्र का शिर काट लिया अग्नि के दोनों हाथ छेदन कर जिह्वा भी खेंचली यमका दण्ड छीन माथे में लात मारी विष्णु और वीरभद्र के साथ युद्ध हुआ तब उन्होंने हजारों नारायण उत्पन्न किये वे सब वीरभद्र के साथ युद्ध करने लगे। वीरभद्र ने भी उन सब नारायणों को शस्त्रों से हटाय एक गदाका प्रहार विष्णु भगवान् की छाती में ऐसा किया कि मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़े और थोड़ेही काल में सम्भल कर उठे और अति क्रोध कर वीरभद्र के मारने के अर्थ सुदर्शनचक्र उठाया परन्तु वीरभद्र ने चक्र

सहित उनको स्तंभन कर दिया और अति तीक्ष्ण बाण से विष्णु भगवान् का मस्तक छेदन कर दिया और उस मस्तक को अपने पवन से उठा कर आहवनीय नाम अग्नि के कुंड में गिरा दिया। इस भांति क्षण मात्र में यज्ञशाला दग्ध कर दी। कलश फोड़ दिये स्तूप उखाड़ डाले और दक्ष के सभासद् मार दिये तब यज्ञ भी भयभीत हो मृगका रूप धारण कर आकाशकी ओर भागा परन्तु वीरभद्र ने एक बाण से उसका भी शिर उड़ा दिया। धर्म, प्रजापति, कश्यप बहुत पुत्रों करके युक्त अरिष्टनेमि और अंगिरा मुनि कृशाश्व और जो २ इधर उधर भागते हुये देख पड़े सब के मस्तकों को पाद से ताड़न कर गिराया। सरस्वती और देवमाता की नासिका अपने तीक्ष्ण नखों से उखाड़ ली दक्ष प्रजापतिका शिर काटकर अग्निमें दग्ध करदिया। इस प्रकार क्षण भरमें उसदक्षके यज्ञ वाट को श्मशान के तुल्य कर दिया और अति क्रोध से गरजने लगे। तब हाथ जोड़ ब्रह्मा जी प्रार्थना करने लगे। कि हे वीरभद्र जी आप ने अपने यज्ञ का नाश किया। देवता और मुनि मार दिये। अब आप क्रोध को शांति करें अपने गणों को भी रोकें। यह ब्रह्मा जी का वचन सुन वीरभद्र शांति भये और अपने सब गणों को भी चारों ओर से बुला लिया इस अवसर नन्दी आदि गणों को साथ ले श्री महाराज शिवजी भी वहां आये। उनको देख ब्रह्माजी ने बहुत सी स्तुति की और शिव जी को प्रसन्न भये जान यज्ञ में मारे देवता और मुनियों को जीवदान मिलने के लिये प्रार्थना की। श्री महादेवजी ने जो २ यज्ञ में मारे गये और जिन के अङ्ग भङ्ग होगये थे सब को पहले की भांति कर दिया और जीवदान दिया। सरस्वती और देवमाता की नासिका ठीक कर दी इन्द्र, वरुण, विष्णु और दक्ष का शिर लगा दिया परन्तु दक्ष का पूर्व शिर अग्नि में दग्ध होगया था। इस कारण यज्ञ के पशु का मस्तक काट दक्ष के लगाया दक्ष भी फिर जीवदान पाय हाथ जोड़ शिवजी की स्तुति करने लगे स्तुति से प्रसन्न हो शिव जी ने दक्ष को अपना गण बनाया और भांति २ के वर दिये। नारायण, ब्रह्मा, इन्द्र आदि सब देवता मुनि परमेश्वर की स्तुति करने लगे शिवजी भी प्रसन्न हो उनको अभीष्ट वरदे अन्तर्धान होगये और देवता भी चलेगए।

शिव पुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ११ में लिखा है कि जब पार्वती हिमालय पर महादेवजी की सेवा करती थीं उसी समय तारकासुर ब्रह्माजी से वर पाकर राजा हुआ जिससे सम्पूर्ण देवताओं को क्लेश हुआ तब वह ब्रह्माजी के

समीप गये और वृत्तांत कह सुनाया उन्होंने कहा कि इसने मेरी तपस्या की है इसलिये मैंने इसको वर दिया है कि तब तक तू यहाँ रहेगा जब तक महादेवजी के वीर्य्य से पुत्र उत्पन्न न होगा। इस लिये तुम सब इसी उपाय को करो तब इन्द्र ने कामदेव को बुलाकर सब वृत्तांत कहा जिसने हिमालय पर जाकर सबको पुकार कार्य्य किया। जब पार्वती इनकी पूजा के लिये गई तो काम से पीड़ित महादेवजी ने अपने हाथ को उसके वक्षांचल धारण करने को बढ़ाया तब तक वह दूर चली गई।

इत्येवं वर्णयित्वातु तपसो विरराम ह।
हस्तं वक्षांचले यावत्तावच्च दूरतो गता॥

स्त्रियों के स्वभाव से वह सुन्दरी लज्जित होकर अपने अङ्गों को देखती और प्रकाश करती चली। इस प्रकार पार्वती की चेष्टा देखकर शिवजी मोह को प्राप्त होगये और कहने लगे जो मैं इसका आलिंगन करूं तो कैसा सुख होगा।

एवं चेष्टांतदृष्ट्वा शंभुर्मोहमुपागमत्।
यद्यालिंगनमेतस्याः करोमि किं पुनः सुखम्॥

फिर क्षणमात्र विचार कर कहा कि मैं किस प्रकार मोह को प्राप्त होगया जो मैं ईश्वर होकर पराये अङ्ग का स्पर्श करना चाहता हूं फिर दूसरा क्षुद्रपुरुष क्या करेगा ऐसे ज्ञान को प्राप्त हो दृढ़ कटिबन्धन को शिवजी रचने हुए कि कहीं ईश्वर भ्रष्ट होते हैं क्या? ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

क्षणमात्रं विचार्यैवं किमहंमोहमागता।
ईश्वरोऽहं यदीच्छेयं परांगस्पर्शसंमुदा॥
तर्हि कोऽन्यतमः क्षुद्रः किं किं नैवकरिष्यति।
एवं विवेकमासाद्य पर्यंकबंधनं दृढम्॥
रचयामास सर्वात्मा ईश्वरः किंपतेदिह।

और अध्याय १४ में लिखा है कि शिवजी महाराज पार्वती के अन्तर्भाव की परीक्षा लेने के लिए वहां गए जहां पार्वतीजी तपस्या कर रहीं थीं शिवजी ने एक वृद्ध स्वामी का स्वरूप कर लिया था। जब वह यहां पहुँचे तो पार्वती ने अतिथि का बड़ा सत्कार किया तब इन्होंने पूछा कि ऐसा घोर तप किस लिये

करती हो तब पार्वतीजी ने सखी द्वारा कहा कि शिवको पति बनाने के लिये, तब अतिथि ने शिवकी सब प्रकार से बुराई की। जिसको सुन पार्वती ने उसको बहुत बुरा भला कहकर अनेक प्रकार से शिवकी प्रशंसा की। जिस को सुन अतिथि ने शिव रूप में होकर कहा कि मैं तुमसे प्रसन्न हूं जो चाहो सो मैं करने को उपस्थित हूं चलो घर चलो। पार्वती ने कहा कि मैं पिता के घर जाती हूं और वहां से विवाह कर आप की सेवा करूंगी तब शङ्कर ने कहा जैसी तुम्हारी इच्छा हो। वैसा ही होगा। इतना कह अन्तर्धान हो काशी में जाकर विचार करने लगे और पार्वती के विरह में उत्कण्ठित हो सप्तऋषियों का स्मरण किया ॥ १० ॥

इत्येवं वचनं श्रुत्वा शिवोऽपि च शिवां तदा।
उवाच वचनं त्वं च यदिच्छसि तथेति तत् ॥
इत्युक्त्वा तदवेशं भुर्गत्वा काशी विचारयन्।
सस्मर च ऋषीं सप्त विरहाविष्ट मानसः ॥

लिङ्गपुराण अध्याय २९ में शिव का अतिथि बन सुदर्शन नाम महात्मा की स्त्री के साथ एक घृणित व्यवहार से उस की परीक्षा करना लिखा है ॥

महाभारत सौप्तिक पर्व में लिखा है कि कुरुक्षेत्र की लड़ाई के पश्चात् जब युधिष्ठिर और उसके संगी जो रण में से बच निकले थे अपने डेरे पर आये जहां रात भर रखवारी करने की प्रतिज्ञा कर रक्षा के वास्ते रहे पर जब अश्वत्थामा जो उनका शत्रु था रात को गया और महादेवजी की विनती की तो उन्होंने उसको अपना खड्ग दिया जिस से उसने द्रौपदी के पुत्रों को मारडाला।

देवी भागवत प्रथम स्कन्द अध्याय १८ में लिखा है। एक बार सनकादि ऋषि महादेव के दर्शनों के लिये वहां गये जहां शिवजी सदा रहते थे। पहुँच कर देखा तो महादेव और पार्वती जी क्रीड़ा करने में आसक्त हैं। उन्हें देख पार्वती जी ने लज्जित हो झट-पट अपने पट धारण किये। ऋषि लोग यह दशा देखकर बदरिकाआश्रम में श्रीनारायण के दर्शन को चले गये तब अति लज्जित पार्वती को देख महादेवजी ने शाप दिया कि तू क्यों लज्जित होती है आगे से हमको छोड़ जो कोई आवेगा वह तुरन्त स्त्री होजावेगा।

अद्य प्रभृति यो मोहात्पुमान्कोपि वरानने ।
वनं च प्रविशेदेतत्सवैयोषिद्भविष्यति ॥ २२ ॥

इसके अनुकूल वैवस्वत मनु का पुत्र सुद्युम्न नाम राजा बिना जाने, एक दिन शिकार खेलने को गया वहां जाते राजा स्त्री और घोड़ा घोड़ी होगया ।

सुद्युम्नस्तु तदज्ञानात्प्रविष्टः सचिवैः सह ।
तथैवस्त्रीत्वमापन्नस्तैः सहेति न संशयः ॥ २४ ॥

फिर वह लज्जा के कारण अपने राज्य को वापिस नहीं गया और स्त्री हो जाने पर उसका नाम इला हुआ । एक दिन चन्द्रमा और बुद्ध वहां पहुँचे । तब बुद्ध ने उस रूपवती स्त्री को देख उसकी इच्छा की इसी प्रकार इला ने भी चाहा कि यह हमारे पति हों निदान दोनोंका समागम हुआ जिससे पुरूरवा नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ॥

संयोगस्तत्र संजातस्तयोः प्रेम्णा परस्परम् ।
सतस्यां जनयामास पुरूरवसमात्मजम् ॥

जब पुत्र हुआ तो बड़े सोच में हो वशिष्ठजी का स्मरण किया जिन्होंने आकर महादेवजी की बड़ी प्रार्थना करने पर प्रसन्न किया और वर मांगा कि यह राजा फिर पुरुष होजाय जिस पर महादेवजी ने कहा कि हमारा वाक्य कभी मिथ्या नहीं हो सकता हां हम तुमसे प्रसन्न हुए इस से राजा एक मास स्त्री रहेगा ॥

मास पुमांस्तु भविता मासं स्त्री भूपतिः किल ॥ ३३ ॥

श्रीमद्भागवत अष्टम स्कंद अध्याय १२ में लिखा है कि देव और दानवों में घोरसंग्राम हुआ तब विष्णुजी ने मोहिनी स्त्री का रूप बना दानवों को मदिरा और देवताओं को अमृत पान कराया । जब यह वृतांत महादेवजी ने सुना तब उमा सहित बैल पर चढ़ गणों सहित वहां पहुँचे जहां विष्णु भगवान् थे । उस समय उन्होंने विष्णु महाराज की स्तुति कर कहा ।

अवतारा मया दृष्टा रममाणस्य ते गुणैः ।
सोहन्तद्द्रष्टुमिच्छामि यत्ते योषिद्वपुर्धृतम् ॥

तुम्हारे अनेक अवतार मैंने देखे अब मैं उस नारी रूप को देखना

चाहता हूं जिस से तुमने दैत्यों को मोहित किया है और देवतों को अमृत पिलाया है।

कौतूहलाय दैत्यानाम् योषिद्रूपो मया कृतः ।
पश्यतां देवकार्याणि गते पीयूषभाजने ॥
तत्तेहं दर्शयिष्यामि दिदृक्षोः सुरसत्तम ।

इस प्रकार से महादेव जी कहके भगवान् विष्णु बोले कि जब अमृत का पात्र देवतों से दैत्यों के पास चला गया तब मैंने दैत्यों को मोहित करने के निमित्त जो स्त्री का रूप धारण किया था वह तुम को दिखलाऊंगा वह मेरा रूप कामियों को अत्यन्त प्यारा है परन्तु वह केवल सङ्कल्पमात्र ही है। ऐसा कहके भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये। जहां उमा के सहित महादेव विराजमान थे, और चारों ओर को देख रहे थे। इसके अनन्तर समीपवर्ती बाग में जिस में लाल २ और कोमल पत्ते तथा पुष्प भिरे हुए थे। गेंदको उछालती हुई एक कन्या अत्यंत सुन्दरी को देखा और मन्द मुसकान वाली स्त्री को गेंद उछालते देख कर महादेव ऐसे काम से व्याकुल हुए उनके पास बैठी पार्वती और गणों की भी लज्जा जाती रही। जब स्त्री के हाथ से गेंद बहुत दूर चली गई और वह उसको पकड़ने के लिये झपटी और वायु ने उसके बारीक वस्त्र को उड़ाया, महादेव उस स्त्री पर ऐसे मोहित हुए कि पार्वती के सामने ही उस के पीछे भागे। वह स्त्री नंगा महादेव को अपने पीछे आता देख कर बहुत लज्जित हुई और वृक्षों में छिप गई महादेव भी वृक्षों में उसके साथ चले गये और उस का जूड़ा पकड़ के (गोद भरके) आलिङ्गन किया। वह स्त्री इधर को तड़प कर महादेव की भुजाओं से छूटी और भागी इस आलिङ्गन से जहां जहां महादेव का.........पतन हुआ वहीं वहीं सोने की खानें हो गई।

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखंड अध्याय १४४ में लिखा है। कि एक बार गाय और बैल आपस में क्रीड़ा कर रहे थे बैल ने विष्टा और मूत्र को छोड़ा तो वह महादेव के माथे पर गिर पड़ा।

पुरा वृषेण गोलोके क्रीडता सहमातृभिः ।
मुक्तं तथा शकृन्मूत्रं पतितं हरमूर्द्धनि ॥

तब उन्होंने गौवों को श्राप दिया। गौवों ने उन से प्रार्थना की तब आपने उन से कहा कि अब तुम साभ्रमती तीर्थ में ब्रह्मवल्ली के समीप खण्ड संज्ञक ह्रद में स्नान करो तब तुम स्वर्ग को जाओगी फिर गौवों ने ऐसा ही किया।

गावः शप्ताभगवता संप्रताञ्चपुनर्हरम्।
प्राप्स्यामहे पुनर्लोकं इतिदेवं यमाचिरे॥
यदा साभ्रमतीतीर्थे ब्रह्मवल्ली समीपतः।
खडंसंज्ञह्रदे स्नात्वा स्वर्गवैप्राप्स्यथध्रुवम्॥

पद्मपुराण षष्ठ उत्तर खण्ड अध्याय १५४ में लिखा है कि एक बार महातेजस्वी विश्वामित्रजी खड्गधार तीर्थ पर गये और साभ्रमती में स्नान कर महादेवजी के स्नान किये और प्रति दिन पूजा करने लगे, उस स्थान पर कोई दुष्ट कौलिक ने आकर महादेवजी के ऊपर मांस चढ़ाया॥ १॥

तत्र कोपि महादुष्टः कौलिकः पापरूपधृक्।
मांसं दत्तं तदातेन शिवस्योपरि भामिनि॥

जब विश्वामित्र ने देखा तो कहा कि इस पापी को दण्ड नहीं दिया इस लिये मैं उसको शाप दूंगा॥ ६३॥

न दत्तस्तस्य दण्डोहि शर्वेण परमात्मनः।
तस्मादहं हि निश्चित्य शापं दास्येन संशयः॥

यह विचार उसी समय महादेवजी को शाप दिया कि इस घोर कलियुग में तुम सर्वथा गुप्त रहो इस प्रकार शाप देकर श्रेष्ठ मुनि चले गये॥६५॥

अस्मिन्कलियुगे घोरे गुप्तस्त्वं भव सर्वथा।
इति दत्त्वाथवै शापं गतवान्मुनिसत्तमः॥

एक बार शिवजी ने विष्णु भगवान् से भिक्षा मांगी। विष्णु ने अपना दाहिना हाथ समर्पण किया शिव ने त्रिशूल मारा और रुधिर की धारा कपाल में गिरने लगी शिव ने उसको मथा उस में से एक पुरुष उत्पन्न हुआ॥

और भी सुनिये कि जब दक्ष महाराज ने अपने यज्ञ में पार्वती के पति महादेव को नहीं बुलाया तो पार्वती जी वहां ही भस्म हो गई। जिनके शोक

में महादेव जी हरद्वार में आये और शोक में डूब गये। उस समय नारद मुनि ने आकर सब वृत्तान्त कहा जिस को ध्यान से उन्होंने जान शोक दूर किया। सृष्टि खण्ड अध्याय ५ में।

शिवजी ने अंजनी के साथ छल किया और उसे अपने पास बुला के मन्त्र देने के धोखे से अपना वीर्य उसके कान में डाल दिया जिससे हनूमान उत्पन्न हुये।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण गणेशखण्ड अध्याय ३ में लिखा है कि एक समय शिवजी ने क्रोध कर शस्त्र से सूर्य को मारा जब वह मृतक हो गये तो कश्यप जी महाराज विलाप करने लगे और सब तरफ अन्धकार हो गया कश्यपजी ने शाप दिया जैसे मेरे पुत्र को तूने मारा है ऐसे ही तेरे पुत्र गणेश का शिर कट जायगा।

मत्पुत्रस्य यथा वक्षच्छिन्नं शूलेन तेऽद्यवै।
त्वत्पुत्रस्य शिरच्छिन्नं भविष्यति न संशयः॥

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय १२२ में लिखा है पार्वती जी ने दीपमालिका के दिन जुआ में महादेवजी को जीत कर नग्न छोड़ दिया था इसते महादेवजी दुःखी और पार्वती सुखी रहती हैं॥

गौर्या जित्वा पुरा शंभुर्नग्नो द्यूतेविसर्जितः।
अतोयं शंकरो दुःखी गौरी नित्यं सुखेस्थितः॥ २६॥

कहिये श्रीमान् जुआ खेलना भी धर्म कार्य्य हो गया क्योंकि महादेव और पार्वती ने खेला, इतना ही नहीं वरन् साल भर की हार जीत मालूम होती है यानी इस रात्रि में जो जीते उसकी साल भर तक जीत और जो हारे उसकी साल भर तक हार होती रही है।

श्रीमान् इस हार जीत को जानने के बहाने से भारतवर्ष में प्रति वर्ष जुआ का सर्वत्र प्रचार हो गया। धर्म शास्त्र जिस को बुरा बताते हैं पुराण उसे वर्ष भर की हार जीत सुख दुःख की कल कहते हैं तिस पर तुर्रा यह कि पार्वती सी पतिव्रता स्त्री ने महादेव को इतना हराया कि धोती तक जीत ली और नग्न उन को छोड़ दिया। जिस से वह दुःखी रहते हैं। कहिये जो आप दुःखी रहते हैं फिर औरों को क्यों कर सुखी करते हैं क्या पतिव्रताओं का यही धर्म है?

पद्मपुराण चतुर्थ पातालखंड अध्याय १११ से कि जब सब देवता स्नान करके चले तब तुम्बरू नाम गान्धर्व आकर गाने लगा उसी समय हनूमान भी गाने लगे जिस को सुन सब प्रसन्न हुये और सबने अपना २ गाना बन्द कर हनूमान जी का गाना सुनना पसंद किया वह गाने लगे अबभोजनों का समय हुआ सब भोजनों को चले महादेव अपने बैल पर चढ़ कर चले तब हनूमान जी से कहा कि तुम भी चढ़लो और गाना सुनाते चलो तब हनूमान जी ने कहा कि आप के सिवाय और कोई नहीं चढ़ सक्ता हां आप हमारे ऊपर सवार हो लें हम आप के मुख की ओर मुख किये गाना सुनाते हुए चलेंगे तब महादेवजी ने उनकी पीठ पर सवार हो लिये महादेव के सवार होते ही हनूमान ने अपना शिर काट डाला व घुमा कर कांधेपर जोड़ महादेवजी की ओर मुख करके गाते हुये चले इस प्रकार शिवजी को गीत सुनाते हुए गौतमजी के घर गये और भोजन के पश्चात् हनूमानजी ने फिर गान किया जिसको सुन जितने काष्ठ गौतम के गृह में लगे थे व जितने आसन पट्टादिक काष्ठ थे, वे सब गीले होगये और सबों में नवीन पल्लव निकल आये १७६, १७७, १७८, १७६। और उस गान में सबका चित्त लग गया उस समय हनूमानजी महादेव के चरणों पर हाथ धरे हुए शिर पर शिवजी को सवार कराये प्रसन्न चित्त स्तुति कर रहे थे तब महादेवजी ने हनूमानजी का शिर दोनों हाथों से पकड़ कर जैसा प्रथम था वैसाही कर दिया॥ १८२ ॥

शिव, ब्रह्मा और विष्णु की दशा।

पद्मपुराण षष्ठ उत्तर खण्ड अध्याय १११ में लिखा है एक बार सब देवगण समूह के साथ ऋषी महादेव आदि सह्य पर्वत की चोटी पर यज्ञ करने के लिये एकत्र हुये। जब महूर्त का समय आया तब तक स्वरा नहीं आई तब विष्णु ने कहा कि यदि स्वरा नहीं आई तो गायत्री से कार्य्य लो जिस को महादेव जी ने भी पसंद किया तब भृगु ने ब्रह्मा के दक्षिण भाग में गायत्री को बिठा कर दीक्षाविधि आरम्भ की इतने में स्वरा भी आ गई और कहा कि पूजने योग्य की पूजा नहीं होती और अपूज्य की पूजा होती है वहां दुर्भिक्ष मरण और भय यह तीन होते हैं हमारे स्थान पर आप ने इस छोटी को बिठलाया है इस लिये सब जड़ और नाना प्रकार के रूप वाले होवो॥ १५ ॥

ममासनेकनिष्ठेयं भवद्भिः सन्निवेशिता ॥
तस्मात्सर्वे जडीभूता नानारूपाभविष्यथ ॥

स्वरा के शाप को सुन गायत्री उठी और देवताओं के रोकने पर भी स्वरा को शाप दिया ॥ १७ ॥

ततस्तंच्छपमा कर्ण्य गायत्री कंपिता तदा ।
समुत्थायाशपद्वैवर्यमाणायितां स्वराम् ॥

कि तुम्हारे स्वामी हमारे भी स्वामी हैं इस लिये तुमने वृथा शाप दिया इस से तुम भी नदी हो ॥ १८ ॥

तवभर्ता यथा ब्रह्मा ममाप्येव तथा खलु ।
वृथाशपस्त्वंयस्मान्मांभव त्वमपिनिम्नगा ॥

तब शिव विष्णु इत्यादि देवता हाहाकार करते पृथ्वी पर गिर दण्डवत प्रणाम कर स्वरा से कहने लगे ॥ १९ ॥

ततो हाहाकृताः सर्वेशिवविष्णुमुखाः सुराः ।
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ स्वरां तत्र व्यजिज्ञपन् ॥

कि हे देवि तुमने इस समय सब ब्रह्मादि देवताओं को शाप दिया है जो वे सब जड़ हो कर नदी हो जावेंगे तो तीन लोक नाश हो जावेंगे । तुमने यह अज्ञान से किया इस से इस शाप को निवृत करो ॥ २१ ॥

तदा लोकत्रयं ह्येतद्विनाशं यास्यति ध्रुवम् ।
अविवेकः कृतस्तस्माच्छापोयं विनिवर्त्यताम् ॥

तब स्वराने कहा कि यज्ञकी आदिमें तुमने गणेशको नहीं पूजा जिससे विघ्न उत्पन्न हुआ हमारे वचन झूठे न होंगे जिससे अपने २ अंशसे नदी होकर यहो हम दोनों भी अपने २ अंशसे नदी हो कर पश्चिम मुख हो कर बहेंगी ॥ २४ ॥

आवामपि सपत्न्यौ च स्वांशाभ्यामापनिम्नगे ।
भविष्ययोऽत्रै देवाः पश्चिमाभिमुखावहे ॥

इसप्रकार स्वराके वचन सुन ब्रह्मा, विष्णु और महादेव तिसी समयमें अपने२ अंशोंसे जड़ हो कर नदी होते हुए ॥ २५ ॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा विष्णु महेश्वराः ।
जड़ीभूता भवन्नद्यः स्वांशैरेव तदा नृप ॥

विष्णुजी कृष्णा, महादेवजी वेण्या और ब्रह्माजी ककुद्मिनी गङ्गा ये अलग २ इसी समय होगये ॥ २६ ॥

तत्र विष्णुरभूत्कृष्णा वेण्या देवो महेश्वरः ।
ब्रह्मा ककुद्मिनीगङ्गा पृथगेवाभवत्तदा ॥

और चतुर्थ देवता भी सह्य पर्वत पर अपने २ अंशको जड़ करके नदियां होते हुए ॥ २७ ॥

देवास्वानपितानंशान् जड़ी कृत्वा विचक्षणाः ।
सह्याद्रि शिखरेभ्यस्ताः पृथगासन् सुनिम्नगाः ॥

गायत्री और स्वरा भी तिसी समयमें पश्चिम बहने वाली नदियां हुई ॥२८॥

गायत्री च स्वरा चैव पश्चिमाभिमुखे तदा ॥

पद्मपुराण पष्ठी उत्तर खण्ड अध्याय ११५ में लिखा है कि पीपल भगवान् विष्णुका रूप है, बरगद महादेव और ढाक ब्रह्माजीका रूप है ॥ २२ ॥

अश्वत्थरूपी भगवान् विष्णुरेव न संशयः ।
रुद्ररूपी वटस्तद्वत् पालाशो ब्रह्मरूप धृक् ॥

इन सबका दर्शन पूजन और सेवा पाप नाश करनेवाली है ॥ २३ ॥

दर्शनं पूजनं सेवा तेषां पापहरास्मृता ।
दुःखापद्व्याधिदुष्टानां विनाशकरणी ध्रुवम् ॥

इनके वृक्ष होने का कारण यह है कि एक बार महादेवजी को पार्वतीजी से भोग करते समय देवताओं ने अग्नि को भेज कर विघ्न किया थो उस समय उस सुख के भ्रंश होने से क्रोध में आकर शाप दियो था ॥ २६ ॥

ततः सा पर्वती क्रुद्धा शशाप त्रिदिवौकसः ।
रतोत्सवसुखभ्रंशात्कंपमाना रुषा तदा ॥

कि कृमि और कीट आदि भी रति के सुखको जानते हैं उस के विघ्न करने से देवता वृक्ष होजाओ ॥ २७ ॥

कृमिकीटादयोऽप्येते जानन्ति सुरतं सुखम् ।
तद्विघ्नकरणाद्देवा ह्युद्भिज्जत्वमवाप्स्यथ ॥

इस प्रकार क्रोधयुक्त पार्वतीजी ने देवताओं को शाप दिया तो सब देवता समूह निश्चय कर वृक्ष होगये ॥ २८ ॥

तिसी शापसे विष्णुजी पीपल और महादेवजी बरगद हुये ॥ २९ ॥

तस्मादिमौ विष्णुमहेश्वरावुभौ ।
बभूवतुर्बोधिवटौ मुनीश्वराः ॥

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय १५८ में लिखा है कि पूर्व समय में कोलाहल के युद्ध में दानवों ने देवताओं को जीत लिया तो देवता प्राण बचाने की इच्छा से सूक्ष्म होकर वृक्षों में प्रवेश कर जाते भये ॥ २ ॥

पुरा कोलाहले युद्धे दानवैर्निर्जिताः सुराः ।
वृक्षेषु विविशुस्तत्र सूक्ष्माः प्राणपरीप्सया ॥ २ ॥

तहां बेल के पेड़ में महादेवजी, पीपल में नाश रहित हरिजी, सिरसा में इन्द्र और नींव में सूर्यनारायण स्थित हो गये ॥ ३ ॥

तत्र बिल्वेस्थितः शंभुरश्वत्थे हरिरव्ययः ।
शीरीषे भूतसहस्राक्षो निंबे देवः प्रभाकरः ॥

पण्डितजी—सेठजी अब इस विषय को समाप्त कीजिये।

सेठजी—मेरी तो यह इच्छा थी आप को दो, तीन दिन त्रिदेवलीला ही सुनाता क्योंकि इन तीनों देवों के वृत्त से पुराण भरे पड़े हैं।

पंडितजी—हम देव और मुनिलीला ही को सुन कर पुराणों का तत्त्व जान चुके थे परन्तु त्रिदेवलीला ने रहे सहे भ्रमको मेट दिया क्या कहूं सेठजी आज आप की प्रशंसा नहीं होती। यदि "स्वामी दयानन्द" जीवित होते तो मैं उनके चरणों को पकड़ कर कृतार्थ होता, जिन्होंने भारत के रहे सहे महत्त्व को बचा लिया।

इस विषय में आपके नोटों की आवश्यकता नहीं क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी के नाम से जो कार्य्य पुराणों में लिखे हैं जिनको आपने सुनाया है

यह स्वयं ही उनके महत्व को प्रकाश कर रहे हैं न मालूम सनातनधर्म सभा के लीडर पण्डित आदि क्यों प्राण देते हैं और इन निन्दित कर्मों को स्तुति कहते हैं सच तो यह है कि यह पुराण व्यास महाराज के कदापि लिखित नहीं हैं कहां ब्रह्मा, विष्णु, शिव, भगवान् के रूप कहां उनके यह अनोखे कर्त्तव्य अब तो मुझको भी रोना आता है। सत्य कहा है कि जब नाश होने वाला होता है तब बुद्धि प्रथम बिगड़ जाती है यही दशा भारतवासियों की हो रही है। कि हम सब अपने मुंह अपनी निंदा को स्तुति कह कर अन्यों से कहलाना चाहते हैं। धन्य है स्वामीजी को जिन्होंने लाखों आदमी एक ओर होते हुये सत्य के बल को संसार में प्रकाश कर दिया इस कारण सेठजी मैं तो इस विषय में आपका आज से सहमत हूं पुराण स्वार्थियों ने हमारी अवनति के लिये बना कर प्रकाश और प्रचार कर दिये। बस और मुझसे कुछ कहा नहीं जाता।

अन्य महाशयों में से कितने एक महाशयों ने कहा कि महाराज पुराणों की लीला सुन कर तो हमारे छक्के छूट गये यह कैसे धर्म पुस्तक हैं इनमें यह क्या लिखा है।

सेठजी श्रीमहाराज और अन्य महाशयों को धन्यवाद देता हूँ क्योंकि आपने सत्य को प्रकट कर दिया आपसे प्रार्थना यही है आप भले प्रकार अपने मित्रों के साथ विचार करें और संसार में सत्य का प्रकाश करें जिससे भारत के धर्म सम्बन्धी विचारों की जगत् में बड़ाई हो और हम सब देव, पितर, ऋषि गण से उद्धार हो परमात्मा की आज्ञा पालन करते हुये सुखों को भोगें॥ ओइम् शम्॥ सब चल दिये।

सेठजी ने पण्डितजी को नमस्ते अन्यों को यथा योग्य कहा।

पण्डितजी ने आशीर्वाद दिया **अन्य सभ्यगणों** ने यथा योग्य कहा।

सेठजी अपने गृह में पधारे।

॥ इति दशम परिच्छेदः ॥

एकादश परिच्छेदः ।

आर्यसेठ—श्रीमान् पंडित जी नमस्ते ।

पण्डितजी—आयुष्मान् ।

अन्य सज्जन महाशय आने लगे और यथा योग्य कर विराजमान् होते गये ।

सेठजी—कहिये श्रीमान् अब आप क्या सुनना चाहते हैं ।

पण्डितजी—सेठ जी व्रत और तीर्थ माहात्म्य के विषय में जो आप की सम्मति हो उसको वर्णन कीजिये ।

सेठजी—बहुत अच्छा ।

श्रीमान् पण्डितजी पुराणों में अनेकान् व्रत लिखे हैं जिनके बड़े २ माहात्म्य सुन २ कर संसारी जन उनका पालन करना अपना परम धर्म समझते हैं यदि मैं उन सब का वृत्तान्त सुनाऊं तो बहुत काल चाहिये इस लिये संक्षेप के साथ उन के नाम और माहात्म्य सुनाता हूं । आप दया पूर्वक सुन विचार कर सारको ग्रहण कर कार्य्य कीजिये जिसका प्रभाव पवलिक पर उत्तम हो ॥

भविष्यपुराण पूर्वार्द्ध में

कृष्णाष्टमी, अनघाष्टमी, सोमाष्टमी, ध्वज नवमी, उल्का नवमी, दशावतार व्रत, रोहिणीव्रत, अवियोगव्रत, गोविन्दशयनव्रत, भीष्मपञ्चक, मल्लद्वादशी, अखण्ड द्वादशी व्रत, मनोरथद्वादशी, धरणीद्वादशी व्रत, अर्कपादव्रत, दुर्गन्धिनाशनव्रत, यमादर्शनव्रत, अनङ्गत्रयोदशीव्रत, पाली व्रत, रंभाव्रत, शिवचतुर्दशी, श्रावणि का व्रत, नयव्रत, सर्वफलत्यागव्रत, बुद्धिविजयपूर्णिमाव्रत, सावित्रीव्रत, कृत्तिकाव्रत, अनन्तव्रत, नक्षत्रव्रत, वैष्णव नक्षत्र पुरुष व्रत, शैवनक्षत्र पुरुषव्रत, सम्पूर्णव्रत, वेश्याओं को कल्याण देने हारे काम व्रत, शनैश्चरव्रत, संक्रान्ति व्रत, पञ्चाशीति व्रत इत्यादि ।

उत्तरार्द्धमें शकटव्रत, तिलकव्रत, अशोकव्रत, करवीर, कोकिल, बृहद्व्रत, भद्रव्रत, अशून्यशयनव्रत, गोत्रिरात्रव्रत, हरतालव्रत, ललितातृतीयाव्रत,

अग्नियोगव्रत, उमामहेश्वरव्रत, सौभाग्य शयनव्रत, अनन्त फलदा तृतीया, रस कल्याणीतृतीया,आर्द्रानन्दकरी तृतीया,चैत्रभाद्र और माघशुक्ल तृतीया,अनन्तादि तृतीया, अक्षय तृतीया, अङ्गारक चतुर्थी, विघ्न विनाशकचतुर्थी, शान्ति व्रत, सरस्वतीव्रत, नागपंचमी का व्रत, भीष्मपंचमीव्रत, विशोक षष्ठीव्रत, कमलषष्ठी, मन्दारषष्ठी, ललिताष्ठी, विजय सप्तमी, कुक्कुटीव्रत, अचलासप्तमी, बुधाष्टमी, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी व्रत, दुर्गाष्टमीव्रत प्रतिमास, पुष्यद्वितीयव्रत, गौरीतृतीयाव्रत, विधान चतुर्थीव्रत, सप्तमीव्रत, रथ सप्तमीव्रत, फलसप्तमीव्रत, जयासप्तमीव्रत, जयन्ती, महाजयन्ती, नन्दासप्तमी, फाल्गुन शुक्लसप्तमी, पद्मव्रत, दोला, दमलक, शयन आदि।

मत्स्यपुराण में—कृष्णाष्टमी,कुलवृद्धव्रत, सौभाग्यशयनव्रत, पुरुष की का वियोग न होने वाला, अन्नव्रत, संसार के उद्धारहोने का व्रत, विशोकसप्तमी, पापमोचन सप्तमी, शर्करासप्तमी, कमलसप्तमी,मदारासप्तमी, शुभसप्तमी,प्रियजन का वियोग न होनेवाला व्रत, अनन्तफलदाईव्रत, विष्णु भगवान् के उत्तम व्रत, इत्यादि व्रतों का वर्णन है।

वाराहपुराण में लिखा है कि पौष, माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, श्रावण, भाद्र, आश्विन, कार्तिक, एकादशी व द्वादशी व्रत, विधान, अभीष्ट पति लाभ व्रत, मुक्ति प्राप्ति व्रत, धन्यव्रत, कांतिव्रत, सौभाग्यप्राप्तिव्रत, अविघ्नव्रत, शांतिव्रत, पुत्र प्राप्ति व्रत, शौर्य्यव्रत, सार्वभौमव्रत, पृथ्वीधृतव्रत, अगस्त शरीर व्रत, कापालिकव्रत।

पद्मपुराण—प्रथम सृष्टिखंड में लिखा है, भीमनिर्जला वेश्या नक्षत्र व्रत, रोहिणी चन्द्रशयनव्रत, अशून्य शयनव्रत, सौभाग्यव्रत, सावित्री व्रत। और षष्ठ उत्तरखण्ड में लिखा है। तुलसी जी का त्रिरात्रव्रत जन्माष्टमीव्रत, त्रिस्पृशाव्रत उन्मालिनीव्रत, पक्षवर्द्धिनी एकादशी बारहमास की एकादशी के व्रत, श्रवण द्वादशीव्रत, कार्तिक माहात्म्य की अनेकान प्रकार से उत्तमता दिखलाई है फिर उसके महीने भर के व्रत का वर्णन, भीष्मपञ्चक व्रत, दीपव्रत, चातुर्मास्यव्रत, वैतरणीव्रत, ऋषिपञ्चमीव्रत, यमद्वितीया, गोवर्द्धनपूजा, राधाअष्टमी, बृहस्पति आदि व्रतों का वर्णन है।

अग्निपुराणमें लिखा है कि प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया चतुर्थी,

पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, श्रावण द्वादशी व्रत, अखण्ड द्वादशीव्रत, त्रयोदशीव्रत चतुर्थदशी शिवरात्रिव्रत, अशोक पूर्णिमा व्रत, वारव्रत, नक्षत्रव्रत, दिवसव्रत, मासव्रत, नानाव्रत दीपदानव्रत, मालोपवास व्रत भीष्मपंचकव्रत कौमुद व्रत हैं।

शिवपुराण में लिखा है शिवरात्रि व्रतविधि उसका माहात्म्य कृष्णाष्टमीव्रत, नामाष्टमीव्रत, पाशुपतव्रत।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण—हरिव्रत, व्रतमाहात्म्य, त्रिमासिकव्रत, द्वादशी जयदुर्गाव्रत, जन्माष्टमीव्रत, आदि–

इसके अतिरिक्त आदित्य पुराणके अनुसार रविवार, शिवपुराणमें से सोमवार और तेरस चन्द्रखण्डके कथनानुसार मङ्गल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र और शनैश्चर को व्रत रखने की आवश्यकता है यही सप्ताह के सात दिन होते हैं। और भी सुनिये विष्णु भगवान् की एकादशी, वामनकी द्वादशी, नृसिंह भगवान् की अनन्त चौदश, चन्द्रमा की पौर्णमासी, दिक्‌पाल की दशमी, दुर्गा की नवमी, वसुओंको अष्टमी, मुनियों की सप्तमी, कार्त्तिक स्वामी की छट, नागोंकी पञ्चमी, गणेशकी चौथ, गौरीकी तीज, अश्विनी कुमारकी दुइज, आद्यादेवी की प्रतिपदा, भैरवकी अमावस। और २४ एकादशियोंके व्रतोंके रहने की आज्ञा है जिनमें व्रतके दिनों में यम और नियम धारण करनेका भी आदेश है और बहुधा व्रतों में अन्न खानेका निषेध ही नहीं वरन् महापाप बतलाया है इन उपरोक्त व्रतोंकी महिमा को सुन २ कर स्त्री, पुरुष लट्टू होजाते हैं क्योंकि लिखा है कि इनके करने से मानधातादि राजा स्वर्गको गये, महादेव बाबा कपालसे छूटे। श्रीरामचन्द्रजी दुःखों से बचे, भीमसेनजीका कल्याण होगया, सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्रके पाप क्षणमें कट गये योगीजन इन व्रतोंको कर मोक्ष पागये इसके उपरान्त यज्ञदान, तीर्थ भी व्रतोंकी समानता नहीं कर सकते तदनन्तर काशी ग्रहण स्नान, गयापिण्ड, गोमती स्नान, कुम्भमें केदारदर्शन, बद्रीनारायण यात्रा, कुरुक्षेत्रमें सूर्य्य ग्रहण स्नान इत्यादि भी व्रतोंके फलके समान फल नहीं देते और न हजार अश्वमेध न सौ राजसूययज्ञ उनकी बराबरी कर सकते हैं इसके उपरान्त व्रत करने वालोंकी सौ सौ पीढ़ी तरजाती हैं १८ प्रकारके कोढ़की यही दवा है प्रथम के हजार जन्मके पाप दूर हो जाते हैं। ८८ हजार विप्रके भोजनका फल मिलता है। काशी, प्रयाग, द्वारिका, बद्रीनाथ आदि तीर्थों की कौन कहे त्रिलोकी के तीर्थों

का फल इन व्रतोंके करने से मिलता है। मन, वाणी के पाप जागरण से जाते रहते हैं वर्षा कराने की यही औषधि है, इससे ब्राह्मणका मारनेवाला, सोना चुरानेवाला, मदिरापीनेवाल, गुरुपत्नी से गमन करने वाला, वेश्यागामी, जुवारी, गोत्रनाशक झूठ बोलने वाला, गुरुनिन्दक, युद्ध से भागने आदि के पाप ही नहीं वरन् मेरु के समान हत्या सब दूर हो जाती है और पुत्र सन्तान, धन ऐश्वर्य, सम्पदा, बुद्धि राजसुख, मोक्ष मिलती है विधवापन जाता रहता है, कुल का विरोध मिट जाता है इत्यादि फल प्राप्त होने हैं जिसके कारण भारतवासी स्त्री पुरुष बिना विचार किए इधर को झुकते चले जाते हैं जिससे भारत का स्वरूप ही पलट गया।

अब प्रथम मैं एकादशी तिथि की महिमा पश्चात् विष्णु महाराज का एकादशी होना और उसके शरीर से एक कन्या का उत्पन्न होना और तत्पश्चात् २४ एकादशियों की कथा इसके अनन्तर अन्य व्रतों की महिमा वर्णन करूंगा आप कृपा पूर्वक श्रवण कीजिए देखिए—

पद्मपुराण सप्तमक्रिया योगसार अध्याय २२में लिखाहै कि जिस प्रकार सब देवताओं में विष्णु श्रेष्ठ हैं। आदित्यों में सूर्य, नक्षत्रों में चन्द्रमा, वृक्षों में पीपल, वेदों में सामवेद, कवियोंमें शुक्र, वर्णोंमें ब्राह्मण, मुनियोंमें व्यास, देवर्षियों में नारद, दानों में अन्नदान, इन्द्रियों में मन, महीनोंमें कार्तिक, पाण्डवों में अर्जुन, शास्त्रों में वेद श्रेष्ठ है। उसी भांति सब व्रतों में एकादशी व्रत श्रेष्ठ है क्योंकि विष्णु भगवान स्वयं एकादशी होगए।

और इसी अध्याय के श्लोक ७ से प्रकट है कि प्रथम भगवान् ने स्थावर जंगम संसार को रच सबके दमन के लिये पाप पुरुष को रचा।

सृष्ट्वा वै पुरुषश्रेष्ठः संसारसचराचरम्।
सर्वेषां दमनार्थाय सृष्टवान् पापपूरुषम्॥ ७॥

जिसका ब्राह्मणों की हत्या मस्तक, मदिरा का पीना नेत्र, सोने का चुराना मुख, गुरु की शय्या में जाना कान, स्त्री हत्या नाक, गऊ की हत्या का दोष भुजा, न्यास का चुराना गर्दन, गर्भ हत्या गला, पराई स्त्री से भोग मित्र, मनुष्यों का मारना पेट, शरणागत की हत्यादिक नाभि के छिद्र की अवधि, करिहव गुरु की निंदा, सकृथभाग कन्या का बेचना, विश्वास वाक्य का कहना, गुदा इन्द्रिय, प्रीति का मारना चरण, उपपातक रोयें थे इस प्रकार बड़ी देह

वाले भयंकर कालेवर्ण, पीले नेत्र अपने आश्रयों के अत्यंत दुःख देने वाले अत्यंत उग्र पुरुषों में उत्तम पाप पुरुष को देख कर दया समेत प्रजाओं के क्लेश नाश करने वाले प्रभुजी चिन्तना करते हुये।

तं दृष्ट्वा पाप पुरुषमत्युग्रं पुरुषोत्तमः।
सदयश्चिन्तयामास प्रजाक्लेशहरः प्रभुः॥ १३॥

कि यह दुर्जन, क्रूर अपने आश्रयों के क्लेश देने वाले को प्रजाओं के दमन के लिये तो मैंने रचा अब इसके कारण को रचता हूं॥ १४॥

सृष्टोऽयंदुर्जनः क्रूरः स्वाश्रयक्लेशदायकः।
प्रजानां दमनार्थाय सृजाम्येतस्य कारणम्॥ १४॥

तदनन्तर भगवान् विष्णुजी आप ही यमराज होगये और पापियों के दुःख देने वाले रौरवनरकों को रचते हुये।

अथा सौभगवान्विष्णुर्बभूव स्वयमन्तकः।
ससर्जरौरवादींश्च निरयान्यापि दुःखदान्॥ १५॥

जो मूर्ख पाप का सेवन करता है वह परमपद को नहीं जाता और यमराज की आज्ञा से रौरवनरक में जाता है॥ १६॥

पापं यः सेवतो मूढो न याति परमं पदम्॥
यमाज्ञयां व्रजेत्तत्र नरकं रौरवादिकम्॥ १६॥

एक समय विष्णु महाराज गरुड़ पर चढ़ कर यमराज के मन्दिर को गये जहां यमराज ने उन की अनेकान प्रकार से पूजा की फिर उन्होंने दक्षिण दिशा में रोनेका शब्द सुन विस्मययुक्त हो यमराज से बोले कि यह रोने का शब्द कहां से आता है॥ २०॥ २१॥

तब यमराज ने कहा कि पापी मनुष्य नरकों में अपने हाथ के किये हुये दोषों से कष्ट पाते हैं। उसी से दुःखित होकर वह चिल्ला रहे हैं तब भगवान वहां गये और उन रौरवनरकादिकों में पापी पुरुषों को देख कर दयावान् हो प्रभु चिन्तना करते हुये॥ २४॥ २५॥

कि मैंने प्रजाओं को रचा है मेरे स्थित होने में अपने कामों के दोषों से वे एकान्त दुःख देने वाले नरक में क्लेश पाते हैं। हे ब्राह्मण इस प्रकार तथा और

भी करुणानिधान भगवान् चिन्तना कर सहसा वे वहां हैं आप ही एकादशी तिथि हो जाते भये ॥ २६ ॥ २७ ॥

एतच्चान्यच्च विप्रेन्द्र ! विचिन्त्य करुणामयः ।
बभूव सहसा तत्र स्वयमेकादशी तिथिः ॥ २७ ॥

तदनन्तर तिन सब पापियों को सुनाते हुये तब वे सब पापरहित होकर परमधाम को जाते हुये। तिससे एकादशी को परमात्मा विष्णु की मूर्ति जानिये। यह सब दुष्कृतियों में श्रेष्ठ और व्रतों में उत्तम व्रत है ॥ २८ ॥

तस्मादेकादशीं विष्णो मूर्त्तिविद्धि परमात्मनः ।
समस्तदुष्कृतिं श्रेष्ठं व्रतमुत्तमम् ॥ २६ ॥

तीनों लोकोंके पवित्र करनेवाली एकादशी तिथिको कर, शङ्कायुक्त पापपुरुष होकर विष्णु की स्तुति करने को प्राप्त होता हुआ ॥ ३० ॥

एकादशीं तिथिं कृत्वापावयन्तीं जगत्त्रयम् ।
शङ्कितः पापपुरुषो विष्णुस्तोतु मुपाययौ ॥ ३० ॥

तदनन्तर पाप पुरुष भक्ति से हाथ जोड़ कर लक्ष्मीपति भगवान् की स्तुति करता हुआ ॥ ३१ ॥ उसकी स्तुति को सुनकर परमेश्वर प्रसन्न होकर उस से बोले मैं तुमसे प्रसन्न हूं, क्या तुम्हारा अभिमत है उसको कहिये ॥ ३२ ॥ तब पाप पुरुष बोला हे विष्णुजी भगवान् ने मुझे रचा है अपनी अनुग्रह में दुःख देने वाला मैं हूं, सो एकादशी के प्रभाव से इस समय में नाश को प्राप्त होता हूँ ॥ ३३ ॥

इस संसार में मेरे मरने से सब देहधारी संसार के बन्धनों से छूट जावेंगे ॥ ३४ ॥

मृते मयि जगत्यस्मिन्सर्वे ते च शरीरिणः ।
भविष्यंति विनिर्मुक्ता भव बन्धैः शरीरिणः ॥ ३४ ॥

हे प्रभु ! सब देहधारियों में श्रेष्ठों के मुक्ति होजाने में आप संसाररूपी कौतुक के मन्दिर में किनके साथ क्रीड़ा करेंगे ॥ ३५ ॥

सर्वेषु च विमुक्तेषु देहि श्रेष्ठेषु पूरुषम् ।
संसार कौतुकागारे कैस्त्वं क्रीडिष्यसे प्रभो ! ॥ ३५ ॥

हे शिवजी ! यदि संसार रूपी कौतुक के मन्दिर में क्रीड़ा करने की आप की वांछा हो तो एकादशी तिथि के डरसे मेरी रक्षा कीजिये ॥ ३६ ॥

क्रीडितुं यदि ते वाञ्छा जगत्कौतुकमन्दिरे ।
एकादशीतिथिभयात्तदा मां त्राहि केशव ॥ ३६ ॥

हज़ारों पुण्य मेरे मरने में समर्थ नहीं हैं. पुण्यकारी एकादशी मेरे मरने में समर्थ है इससे वर देने वाले हूजिये ॥ ३७ ॥

अन्यैः पुण्यसहस्रैस्तु मां हंतुं नहि शक्यते ॥
शक्नोत्येकादशीपुण्या मां हंतुं वरदो भव ॥ ३७ ॥

मनुष्य-पशु-कीड़े तथा और जंतुओं में पर्वत वृक्ष और जल के स्थानों में नदी समुद्र और वन के प्रान्तों में स्वर्ग, मनुष्यलोक, पाताललोक, देवता, गन्धर्व और पक्षियों में एकादशी तिथि के डर से भागता फिरता हूं मुझको कहीं निर्भय स्थान नहीं मिलता । मैं करोड़ों ब्रह्माण्ड के बीच एकादशी तिथि में स्थित होने को स्थान नहीं पाता फिर वह पृथ्वी पर गिर रोने लगा उस समय भगवान् ने कहा उठो, शोक मत करो एकादशी तिथि में तुम्हारे स्थान को कहता हूं ॥ ३८ ॥ ३६ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ तीनों लोकों को पवित्र करनेवाली एकादशी के आने में अन्न में स्थित होना । अन्न में आश्रित होकर स्थित हुए तुमको मेरी मूर्ति यह एकादशी तिथि नहीं मारेगी ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ इतना कह भगवान् अन्तर्द्धान होगये । और पाप पुरुष कृतार्थ हो कर जैसे आया था वैसा ही चलागया ।

श्रीमान् विष्णु महाराज का एकादशी तिथि होना देखिये । यथा अच्छी गढ़न्त है-प्रथम पापों की रचना फिर पापियों को देखकर दुःखी होना-तिस पर स्वयं एकादशी हो जाना-परन्तु पण्डितजी जब हम **पद्मपुराण षष्ठ** उत्तरखण्ड अध्याय ३८ को देखते हैं तो वहां यह लिखा मिलता है एक समय युधिष्ठिर महाराज ने कृष्ण महाराज से पूछा कि पुण्यकारी एकादशी तिथि किस प्रकार से उत्पन्न हुई और वह क्योंकर देवताओं की प्यारी हुई यह सुन कर श्रीकृष्ण महाराज ने कहा कि सत्युग में मुर नामी दैत्य ने इन्द्र आदि सब देवताओं को जीत स्वर्ग से निकाल दिया उन्हों ने घूमते हुए महादेव के पास जाय सब वृत्तान्त कहा उन के कहने से सब क्षीरसागर में गये और प्रार्थना की ।

तब विष्णुजी बोले कि हे इन्द्र वह दैत्य कैसा है कैसा रूप बल है और उसका स्थान कहां है। वीर्य्य और पराक्रम क्या है। कुछ उसको वर भी मिला है, यह सब हम से कहो।

तब इन्द्र ने सब वृतान्त कहा जिस को सुनकर चन्द्रावती नगरी का उस राक्षस को मारने के लिये गये उस ने पहिलें देवताओं को जीता वह सब दिशाओं को भाग गये।

फिर भगवान् ने बाणों को छोड़ा और चक्र से लाखों शिर काट लिये फिर वह राक्षस भगवान् से बाहु युद्ध देवताओं के हजार वर्ष तक करता रहा तब भगवान् को बड़ी चिन्ता हुई देवता सब नष्ट हो गये आप हार कर बद्रिकाश्रम को चलेगये ॥ ८० ॥

विष्णुश्चिंतां प्रयन्तश्च नष्टाः सर्वाश्च देवताः।
विष्णुश्च निर्जितस्तेन गतो वदरिकाश्रमम् ॥ ८० ॥

वहां सिंहवती नाम बारह योजन की गुफा में जाकर सोये पीछे दानव भी घुस कहने लगा कि मैं निस्संदेह मारूंगा तब तो विष्णु की देह से एक रूपवती कन्या अस्त्र, शस्त्र सहित उत्पन्न हुई ॥

निर्गता कन्यका तत्र विष्णुदेहाद्युधिष्ठिर।
रूपवती सुसौभाग्य दिव्यप्रहरणायुधा ॥ ८५ ॥

और उसको मुरनाम दैत्य ने देखा और युद्ध होने लगा और उस की हुँकार से वह भस्म हो गया जब वह दैत्य मर गया तब विष्णु भी जग उठे ॥ ८८ ॥

हुंकारैर्भस्मसाज्जातो मुरनामा महासुरः।
निहते दानवे तस्मिंस्तत्रदेवस्त्वबुध्यतः ॥ ८८ ॥

और कहने लगे इसको किसने मारा तब कन्या ने कहा कि इसने देवता गन्धर्व इत्यादि को स्वर्ग से निकाल दिया था और आप सोते थे मैंने सोचा कि यह तीनों लोकों को नाश कर देगा। यह सुन विष्णुजी बोले कि जिस ने हम को जीत लिया उस को तुम ने कैसे जीत लिया तब कन्या रूपी एकादशी बोली कि मैंने तुम्हारे प्रसाद से इसको मारडाला ॥ ९३ ॥

त्वत्प्रसादाच्च भोस्वामिन्महादैत्यो मया हतः ॥ ९३ ॥

तब भगवान् ने कहा कि तुमने तीनों लोकों में मुनि देवताओं को आनन्द दिया इस लिये जो कुछ मांगो मैं निस्सन्देह दूंगा जो देवताओं को दुर्लभ हो। तब एकादशी बोली कि मुझको तीन वरदान दीजिये। विष्णु ने कहा बहुत अच्छा। तब एकादशी ने कहा कि तीनों लोकों और चारों युगों में सब तीर्थों से प्रधान सब विघ्नों के नाश करने वाली सिद्ध देनेवाली देवी हो जाऊं ॥ ९९ ॥

जो मनुष्य आप की भक्ति से हमारा व्रत करे वह आप की कृपा से सब सिद्धि को प्राप्त हो और जो व्रत करने वाले रात्रि में एक बार भोजन करें उनको हे माधवजी! द्रव्य, धर्म, मोक्ष दीजिये तब विष्णु ने कहा कि तुम जो कहती हो वह सब होगा। हे भद्रे तुम सब मनोरथों को देने वाली होगी।

यत्वं वदसि कल्याणि तत्सर्वं च भविष्यति।

सर्वान्मनोरथान्मेदे दास्यसित्वं च नान्यथा ॥ १०२ ॥

तुमको मैं शक्ति मानता हूं निस्संदेह तुम्हारे व्रत में स्थित जो हमारी पूजा करेंगे वे मोक्ष को प्राप्त होंगे। तीज, अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी इन सब में विशेष कर एकादशी अत्यंत प्रिया है इस से सब तीर्थों से पुण्य अधिक सत्य सत्य होगा यह तीन वाणी से वर दिया तब तो एकादशी बड़ी हृष्ट-पुष्ट हो गई ॥ १६० ॥ फिर भगवान् ने कहा कि तुम शत्रु को मारोगी सब विघ्नों को नाश करोगी सिद्धि और वरको देवोगी जो एकादशी में उपवास करते हैं उनको निस्संदेह वैष्णव भगवान् के स्थान की प्राप्ति होती है ॥

पंडितजी—इन दोनों बातों में कौन सी बात सच्ची है परन्तु सनातन-धर्म के मन्तव्य के अनुसार पुराणों को व्यास महाराज ने बनाया है। क्या व्यासजी की ऐसी ही बुद्धि थी। नहीं! नहीं!! नहीं नहीं!!! वह बड़े ज्ञानी महात्मा थे इसी लिये तो हम कहते हैं कि यह पुराण महर्षिकृत नहीं हैं अब हम आप को २४ एकादशियों के माहात्म्य संक्षेप के साथ पद्मपुराण से सुनाते हैं।

———o———

मोक्षदा एकादशी।

अध्याय २९ में इस मोक्ष नाम एकादशी के विषय में लिखा है वह सब पापों को हरनी है और जिसके पुरुषे नरक में हों वह मोक्ष को पाते हैं जैसा कि:—

अधोयोनि गताश्चैव पितरो यस्यपापतः ।
अल्पाश्च पुण्यदानेन मोक्षं पांतिन संशयः ॥

चम्पक नगर में वैखानस नाम राजा था जो पुत्रों के समान प्रजा का पालन करता था एक दिन रात्रि में राजा ने स्वप्न देखा कि उसके पितर नर्क में पड़े हैं जैसा कि—

स्वकीय पितरो दृष्ट्वा अधोयोनि गतान्नृपः ॥

राजा देख कर बड़े विस्मय हुये और स्वप्न का सब वृतांत ब्राह्मणों से कहा उन्होंने कहा यहां से थोड़ी दूर पर्वत मुनि रहते हैं उनके पास जाकर पूंछिये, राजा गया उस ने उपरोक्त हाल कहा और उनके मोक्ष का हाल पूंछा। मुनि ने कहा कि तुम अगहन की मोक्षानाम की एकादशी के व्रत को कर उस का फल उनको दीजिये जिससे उनका मोक्ष हो जायगा । राजा ने अपने राज्य में आकर व्रत किया उस का फल पितरों को दे दिया जिससे पितर नरक से छूट मोक्ष को प्राप्त हुये और उन्होंने आकाश से कहा कि पुत्र तुम्हारा कल्याण हो ।

राजानं चान्तरिक्षे सगिरं पुण्यामुवाचह ।
स्वस्ति स्वस्तीतिते पुत्र प्रोच्य चैवं दिवंगतः ॥

इस से बढ़ कर मोक्ष देने वाली कोई एकादशी नहीं है इसके पुण्य की गिन्ती नहीं चिंतामणि के समान मोक्ष देने वाली है।

नातः परतराकाचित्मोक्षदैकादशी भवेत् ।
पुण्यसंख्यां न जानामि राजन्मे प्रियकृद्व्रतम् ॥ ४६ ॥

नोट—अब यहां यह विचारना चाहिये कि यदि यह पद्म पुराण महात्मा कृष्ण के समय में होता कृष्ण भगवद्गीता में यह न लिखते कि अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभम् परन्तु पद्मपुराणी यह लिखते हैं कि इस एकादशी के करने से न केवल अपने ही पाप दूर होते हैं किन्तु पितृगणों तक को भी नरक से स्वर्ग में पहुँचा देती है ।

कहिये पण्डितजी अब क्या और चाहिये लीजिये एकादशी का व्रत पितृगणों को नरक से स्वर्ग में भी पहुँचा देता है अर्थात् पुत्रादि के कर्म जन्मों को

भी लाभ पहुँचाते हैं। इसके उपरांत जब उपरोक्त एकादशी व्रत से पितृ स्वर्ग को चले जाते हैं फिर गया श्राद्धादि की क्या आवश्यकता रही। सब मिल पितरों के स्वर्ग वास के लिये इसी व्रत की ओर सनातनी भाइयों को ध्यान करना चाहिये इसमें धन भी न्यून व्यय होगा समय कम खर्च जिस पर गया आदि के आने जाने की हैरानी, मार्ग की थकावट का बचत, फिर क्यों इधर ध्यान दिया जाता है-पण्डित पुराणों की अपार लीला है।

सफला।

जिस प्रकार सर्पों में शेष जी, पक्षियों में गरुड़, देवताओं में विष्णु, दो पांव वालों में ब्राह्मण, ऐसेही व्रतों में यह एकादशी श्रेष्ठ है। यह पौष कृष्ण पक्ष में सफला नाम से होती है।

इससे लोक में धनवान होते हैं मरने पर मोक्ष होती है। महिष्पति नाम राजाकी चंपावती नगरीमें पांच पुत्र थे उनमें से बड़ा पुत्र सदैव बड़े २ पापों को करता था दूसरों की स्त्रियों को भोगता और मदिरा पीता था। पिता के द्रव्यको पाप कर्मों में खर्च करता था ब्राह्मणों की निंदा में लगा रहता था राजा ने उस के भाइयों से सम्मति कर उस पापी को अपने राज्य से निकाल दिया। वह वन में जीवों को मार कर अपना निर्वाह करता और पुराने पीपल के वृक्ष के नीचे रहने लगा। पौष की कृष्णपक्षकी दशमी में वृक्षों के फल खाकर वस्त्र विहीन वहीं सो गया जाड़े के मारे प्राणहीन सा हो गया और सफला एकादशी के दोपहर दिन चढ़े चेता और पांवों में पीड़ा के कारण चल भी न सका भूख से अत्यंतपीड़ित हुआ। जीवों के मारने की शक्ति भी न रही फल तोड़कर आश्रम को लौट गया इतने में सूर्य्य अस्त होगये फलों को वृक्ष की जड़ में धर कर हे तात क्या होगा ऐसा कहकर रोने लगा और यह कहाकि इन फलों से लक्ष्मी के पति भगवान प्रसन्न हों ऐसा कह नींद आगई। भगवान ने उस दुरात्मा का रात्री में जागरण और फलों से उसका सफला एकादशी का पूजन माना। ऐसा करने के फल में उसको अकंटक राज्य मिला॥

अकस्मात्तमेवैतत्कृतवान्वै सलुंपकः।
तेन पुण्यप्रभावेन प्राप्तं राज्य निरन्तरम्॥

फिर आकाश वाणी हुई कि तुम राज्य को भोगो फिर सुन्दर रूप हो

गया उसकी बुद्धि श्रेष्ठ वैष्णवी हो गई और ५१० वर्ष तक राज्य किया फिर कृष्ण के प्रताप से पुत्र आदि हुये उनके सुख को भोग कर फिर कृष्ण के समीप पहुँचा अर्थात् जो सफला एकादशी का पूजन करता है वह इस लोकमें सुख को भोग कर मर कर मोक्ष को पाता है ॥

एवंयः कुरुते राजन् सफला व्रतमुत्तमम् ।
इह लोके सुखं प्राप्य मृता मोक्षमवाप्नुयात् ॥

नोट—वर्तमान समय में जो बड़ी श्रद्धा से सफला व्रत करते हैं वह दरिद्र रहते हैं और अश्रद्धा से व्रत करने वाले राज्य पाते हैं । यह भी विष्णु महाराज के न्याय का नमूना है ॥

पुत्रदा ।

पौष शुक्ला एकादशी का नाम पुत्रदा है जो तीनों लोक में सबसे श्रेष्ठ है । भद्रावतीपुरी में सुकेत नाम राजा जिनकी रानी का नाम चंपका था, पुत्र न होने से दोनों क्लेश में रहते थे, एक दिन राजा घोड़े पर सवार होकर सघन वन को गया जहां तालाब के किनारे मुनि लोग वेद जपकर रहे थे वहां पहुँचा और दण्डवत कर उनसे पूंछा कि आप लोग यहां किस लिये एकत्रित हैं मुनियों ने कहा कि आज से पांचवें दिन माघ का स्नान होगा इसके स्नान के लिये यहां एकत्रित हुये हैं । हे राजन् ! आज पुत्रदा नाम एकादशी है इस में व्रत करने वालों को भगवान् पुत्र देते हैं । पद्म० अध्याय ॥ ४१ ॥

अद्य चैकादशी राजन् पुत्रदानामनागतः ।
पुत्रं दद्दात्यसौ विष्णुः पुत्रदा कारिणां नृणाम् ॥ ४५ ॥

इस प्रकार के वचन सुन एकादशी पुत्रदा का व्रत विधान से किया और द्वादशी परायण कर मुनियों को बारम्बार नमस्कार कर घर आये रानी ने गर्भ धारण किया नवें मास तेजस्वी पुत्र हुआ जो कुछ काल के पीछे राजा हो प्रजा की रक्षा करने लगा है राजा एकान्तचित्त होकर जो व्रत करते हैं वे लोक में पुत्रवान् होते हैं और परलोक में सुख प्राप्त करते हैं इसके सुनने से पढ़ने से अग्निष्टोम का फल होता है ॥ ५३ ॥

एकचितास्तु ये मर्त्याः कुर्वन्ति पुत्रदा व्रतम्
पुत्रान्प्राप्येह लोकेतु मृतास्ते स्वर्गगामिनः ॥

पठनाच्छ्रवणाद्राजन्नग्निष्टोमफलं लभेत् ।

नोट—श्रीमान् पण्डितजी राजा दशरथजी ने पुत्रों के लिये ऋषियों की सम्मति से यज्ञ कर पुत्र लाभ किया था। यहां एकादशी व्रत के करने से ही पुत्र की प्राप्ति होगई। कहिए क्या राजा दशरथजी के समय यह पुराण न थे जिससे उनको अन्य उपाय करना पड़ा। वर्तमान समय में एकादशी व्रत के रखने वाले क्या पुत्र विहीन नहीं हैं यदि हैं तो क्या कारण है?

षट्तिला।

एक समय दालभ्य ऋषि पुलस्त्य मुनि के पास गये और कहा महाराज मनुष्य ब्रह्महत्यादि अनेक पापों से युक्त हैं। पराया द्रव्य चुराते हैं। व्यसन में मोहित होते हैं। वह नरक से क्यों कर बिना परिश्रम किए थोड़े दान से किस प्रकार से बचें सो आप कहिये। पुलस्त्य ने कहा कि माघ के कृष्ण पक्ष में षट्तिला नाम एकादशी का व्रत करे। भगवान् का पूजन, कृष्ण का नाम कीर्तन, जागरण, परमात्मा से प्रार्थना, जितेन्द्रिय रह, काम, क्रोध, ईर्षा को छोड़ अर्घ्य दे। ब्राह्मण को छतुरी दे। जूता, कपड़े, श्यामा गाय, काले तिल के पात्र का दान करे क्योंकि जितनी संख्या तिल है वह उतने हजार वर्ष स्वर्ग में बसता है तिलसे स्नान, उबटना, होम, जल, तिल, भोजन यह छः तिल भोजन पाप के नाशने वाले हैं॥ २०, २१, २२॥ पद्म० अध्याय ४२॥

तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते।
तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी॥
तिलदाता च भोक्ता च षट्तिला पापनाशना॥ २२॥

पहिले मनुष्य लोकमें एक ब्राह्मणी हुई जो व्रतचर्य्या और देव पूजा में रत रह कर सदा हमारी पूजा कर व्रतों से शरीर को क्लेशित करती रहती थी परन्तु भिक्षुक को भिक्षा और ब्राह्मणों को तृप्त नहीं करती थी तब मैं कपाल रूप धारण कर भिक्षा का पात्र ले मनुष्य लोक में जा उससे भिक्षा मांगी तब उसने बड़ा क्रोध कर मिट्टी का पिण्ड तांबे के बर्तन में छोड़ दिया तब भगवान् उसको लेकर स्वर्ग को गये॥ ३२॥

तया कोपेन महता मृत्पिण्डस्ताम्रभाजने।
क्षिप्तोयावदहं ब्रह्मन्! पुनः स्वर्गंगतोद्विज॥ ३२॥

कुछ कालके पीछे वह स्त्री देहको त्याग स्वर्गको गई जहां मिट्टी के पिण्ड देने के कारण सुन्दर घर मिला परन्तु उसमें अन्नादि कुछ भी न था तब वह भगवान् के पास गई और कहा मैंने बहुत व्रत उपवास किया है परन्तु मेरे घर में कुछ दिखलाई नहीं देता, उन्होंने कहा तुम विसमय मतकरो देवों के स्त्रियां तुम्हारे देखने को आवेंगी उन्हीं के उपदेश से उसने षट्तिला का व्रत किया कि जिससे उसके घर में धन, धान्य सोना चांदी भी भरगया। क्षणमात्र में रूप और कांति को प्राप्त हुई इसलिये जो मनुष्य जन्म २ आरोग्य रहना चाहे और दरिद्र का नाश करना चाहे वह षट्तिला की विधि पूर्वक कर सुपात्र को दान देता रहे तो सब पाप नाश होजाते हैं।

लभते चैवमारोग्यं नरो जन्मनि जन्मनि ।
न दारिद्र्यं न कष्टत्वं न च दौर्भाग्यमेव च ॥ ५० ॥
सम्भवेद्वै द्विजश्रेष्ठ षट्तिला समुपोषणात् ।
अनेन विधिना भूप तिलदाता न संशयः ॥ ५१ ॥
मुच्यते पातकैः सर्वैरनायासेन मानवः ।
दानं च विधिवत्पात्रे सर्वपातकनाशनम् ॥ ५२ ॥

नोट—तिलोंके दानसे एक हज़ार वर्ष स्वर्ग मिलता है क्या इससे भी सहज कोई और उपाय स्वर्गकी प्राप्तिका होसकता है फिर मैं पूछता हूं कि व्रतादिसे शरीर सुखाना अथवा कष्ट उठाना और विष्णुकी पूजा करनेसे क्या प्रयोजन है हां इस कथासे सुपात्रको दान देनेकी आज्ञा मिलती है अफ़सोस है कि हमारे सनातनी भाई इस पर दृष्टि डालकर दान नहीं करते ।

—— :o: ——

जया ।

एक समयमें स्वर्गमें इन्द्र राज करते थे-जहां कल्पवृक्षयुक्त नन्दनवनमें देवता लोग सुखपूर्वक रहते थे एकबार इन्द्र इच्छापूर्वक आनन्द से पचास करोड़ स्त्रियों समेत नाचने लगे और गन्धर्वों की स्त्रियां गाने लगीं चित्रसेन की मालिनी स्त्री की कन्या पुष्पदन्ती और पुष्पदन्त का पुत्र माल्यवान् (जो पुष्पदन्ती के रूप से अत्यन्त मोहित था)भी वहां उपस्थित था इस से वह शुद्ध गान न कर सकी तब इन्द्र अपना अपमान समझ क्रोधित हो दोनों को शाप दे बोले कि हे पतित

मूर्ख तुम दोनों को धिक्कार है हमारी आज्ञा को तुमने भङ्ग की इससे दम्पती भाव धारण कर पिशाच हो मनुष्य लोक में कर्मके फल भोग करो। पद्म अ०४३।

युवां पिशाचौ भवतां दम्पती भावधारिणौ ।
मर्त्यलोकमनुप्राप्तौ भुञ्जनौ कर्मणः फलम् ॥ २६ ॥

इन्द्र के शाप से वह दोनों पिशाच हो हिमवान् पर्वत पर प्राप्त हुये और मारे जाड़े के व्याकुल पिशाच ने पिशाचनी से कहा कि क्या रोम हर्षन हमने अधिक पाप किया जिससे अपने ही दुष्कर्म से पिशाचता प्राप्त हुई जो घोर नरक से भी अधिक दुःख देने वाली है इस लिये सब प्रकार से पाप न करने चाहियें। इसी चिंता में दोनों दुःखित हो रहे थे इतने में माघ की जया एकादशी प्राप्त हुई तो उस दिन आहार, जल पान न किया। न किसी जीव को मारा, न फल खाये, केवल पीपल के वृक्ष के समीप दुःखयुक्त स्थिर रहे। सूर्यनारायण अस्त हो गये इसी दुःख में रात व्यतीत हुई। द्वादशी के सूर्य उदय हुये। इसी व्रत के प्रभाव से दोनों पूर्व के समान रूपयुक्त हो विमान पर चढ़ स्वर्ग को जा इन्द्र के आगे प्रणाम किया।, तब इन्द्र विस्मय हो बोले कि मेरे शाप को किसने छुड़ाया तब माल्यवान् ने कहा कि भगवान् के प्रसाद जया एकादशी व्रत और हे स्वामिन ! आप की भक्ति से पिशाचपन गया ॥ ४८ ॥

इन्द्र यह सुन कर बोले कि तुम दोनों भगवान् की भक्ति एकादशी के करने वाले हो इस लिये हमको भी पूज्य हो तुम निस्संदेह पुष्पदन्ती के संग विहार करो। तब कृष्ण ने कहा कि जिसने जया का व्रत किया उसने सब दान, यज्ञ किये ॥ ५, २ ॥

सर्वदानानि तेनैव सर्वयज्ञा ह्यशेषतः ।
दत्तानिकारताश्चैव जयायास्तु व्रतंकृतम् ॥

यह मनुष्य करोड़ कल्प तक वैकुण्ठमें निश्चय आनन्द करता है। हे राजन् ! पढ़ने, सुनने से अग्निष्टोम का फल पाता है ॥ ५४ ॥

कल्पकोटिर्भवेत्तावद्वैकुण्ठे मोदते ध्रुवम् ॥ ५४ ॥

नोट—पण्डित जी इस कथा में बहिन पर भाई का आसक्त होना लिखा है। तिस पर भी भगवान् ने विमान पर चढ़ा स्वर्ग में पहुँचा दिया और इन्द्र महाराज ने स्वयं आज्ञा दे दी कि तुम अपनी बहिन के साथ विहार करो क्यों

न हो जब इन्द्र महाराज स्वयं ही ५० करोड़ स्त्रियों के साथ नाच रहे थे प्यारे पण्डित जी आप स्वयं तो विचार करें। क्या हमारे प्राचीन पुरुष और देवता ऐसे ही थे जो उपरोक्त कर्म करने वालों को स्वर्ग में रहने की स्पष्ट आज्ञा देदी। फिर भला पापों की वृद्धि क्यों न हो।

विजया।

पूर्व समय में जब रामचन्द्र १४ वर्ष के लिये वन में गये और पञ्चवटीपर सीता ने लक्ष्मण समेत निवास किया जहां से यशस्विनी सीता को रावण हर लेगया। जिस के दुःख से रामचन्द्रजी मोह को प्राप्त हो सीता की ढूंढ़ते हुये मरे जटायू के पास आये और कबन्ध को मार सुग्रीव के साथ मित्रता कर हनूमान द्वारा सीता की खबर पा लङ्का पर चढ़ाई की तब रामजी ने लक्ष्मण से कहा कि हे लक्ष्मण किस पुण्य से इस समुद्रसे पार हों क्योंकि यह सदैव अगाध और जल के जन्तुओं से भरा है कोई उपाय नहीं दीखता जिससे इसको पार हो जावें। अ० ४४॥

उपायं नैव पश्यामि-येनासौ सुतरो भवेत्॥ १२॥

तब लक्ष्मणने कहा कि आप आदिदेव हैं यहां से दो कोस पर बकदालभ्य मुनि और बहुत से ब्राह्मण रहते हैं उनसे चल कर कोई उपाय पूंछिये यह सुन रामजी वहां पहुँच मुनि को मस्तक से प्रणाम कर बोले कि हे मुनिजी आपकी कृपासे जिस प्रकार हम समुद्र उतर जावें उस उपाय को प्रसन्न होकर इसी समय कहिये।

यह सुन मुनि ने कहा कि आप व्रतों में उत्तम व्रत विजया एकादशी का व्रत करो जो फागुण कृष्ण पक्ष में होती है जिस से तुम्हारी जीत होगी और समुद्र पार हो जाओगे॥

तस्या व्रतेन हेराम! विजयस्ते भविष्यति।
निःसंशयं समुद्रं त्वं तरिष्यतिसवानराः॥ २५॥

दशमी के दिन एक घड़ा सोने, चांदी, तांबे या मिट्टी का स्थापन करे और उसमें जल पत्ते छोड़ देवे। सप्तधान्य नीचे यवों को ऊपर रक्खे तिसके ऊपर सोने के प्रभु नारायण को स्थापन करे एकादशी के दिन सवेरे स्नान करे फिर

कलश को रख कण्ठ में माला पहिरावे सुपारी, नारियल, चन्दन, धूप, दीप अनेक प्रकार की नैवेद्य लगावे। कलश के आगे अच्छी २ कथाओं से दिन रात्रि व्यतीत करे दीपक जला के द्वादशी के दिन सोने की भगवान की मूर्ति को वेद के पारगामी ब्राह्मण को दे देवे। हे राम इस व्रत को यत्न पूर्वक करो तुम्हारी जय होगी श्रीराम ने सुन कर वैसा ही किया जिससे उनकी जीत हुई अर्थात् लङ्का को जीता रावण को मारा, सीता को पाया। इस प्रकार हे पुत्र जो व्रत करते हैं उन की इस लोक में जीत होती है मरने पर स्वर्ग मिलता है इस लिये इस विजया का व्रत करना चाहिये जिस से सब पाप नाश होते हैं और पढ़ने सुनने से वाजपेय यज्ञ का फल होता है।

विजयायाश्चमाहात्म्यं सर्वकिल्बिषनाशनम्।
पठनाच्छ्रवणाच्चैव वाजपेयफलं लभेत् ॥ ३७ ॥

नोट—प्यारे भाइयो क्या अब भी इसमें कुछ संदेह रहा कि श्रीरामचंद्रजी ईश्वर थे ?

१-दुःख मोह का होना, सीता का ढूंढ़ना क्या यही सर्वज्ञता के लक्षण हैं ? २-जिनको यह भी ज्ञात नहीं कि किस पुण्य से समुद्र पार हों, और क्या उपाय करें। ३-भला जो अपने आप तरने के लिये तो साधारण मुनि से उपाय पूंछे तब दूसरों को क्या तार सकते हैं, दशरथी राम के जपने वाले अब भी इस श्लोक पर दृष्टि डाल अपने आप को सम्हालो और वैदिक शरण में आओ। ४—रामचन्द्र उपास्य थे, वा उपासक यदि उपास्य थे, तब तो यह कथा झूंठी और यदि वे उपासक थे, तो उनकी उपासना करना वृथा है।

आमला।

पूर्व समय में जब कि सब जीव नष्ट हो गये और एक जल ही जल हो गया और परमात्मा सनातन पुरुष अपने नाश रहित श्रेष्ठ ब्रह्मपद को प्राप्त हो गये। ब्रह्म के मुख से चन्द्रमा के समान दीप्त वाला थूकने से बिन्दु उत्पन्न हुआ वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। तो उस बिन्दु से भारी आंवले का वृक्ष उत्पन्न हुआ, उसकी शाखा प्रशाखा बहुत फैलीं और वह फल के भार से नव गया। अध्याय ४१ ॥

तस्माद्बिंदोः समुत्पन्नः स्वयं धात्री नगोमहान्।

शाखाप्रशाखाबहुलः फलभारेण नामितः ॥ १७ ॥

उसके पीछे और देवताओं को रचा जिन्होंने आंवले के वृक्ष को नहीं जाना तब आकाश वाणी हुई कि यह आंवले का पेड़ है इसके स्मरण से गौदान, छूने से दूना, खाने से तिगुना फल होता है यही वैष्णवी पाप नाशने वाली है जड़ में विष्णु, ऊपर ब्रह्मा, स्कंद में परमेश्वर, महादेव शाखाओं में, सब मुनि, प्रशाखाओं में देवता, पुष्पों में पवन, फूलों में प्रजापति, स्थित हैं मैंने सर्व देवमयी इस आमले को कहा है इस लिये विष्णु की भक्ति में परायणों को यह पूजने योग्य है।

सर्वपापहरा प्रोक्ता वैष्णवीपापनाशिनी ।
तस्या मूलेस्थितो विष्णुस्तदूर्ध्वे च पितामहः ॥ १८ ॥
स्कंधे च भगवान् रुद्रः संस्थितःपरमेश्वरः ।
शाखा सुमुनयः सर्वे प्रशाखासु च देवताः ॥ १९ ॥
पर्णेषु वसते देवाः पुष्पेषु मरुतस्तथा ।
प्रजानां पतयः सर्वे फलेष्वेव व्यवस्थिताः ॥
सर्वदेवमयी ह्येषा धात्री च कथिता मया ।
तस्मात्पूज्यतमा ह्येषा विष्णुभक्तिपरायणैः ॥ २१ ॥

तब देवता बोले आप कौन हैं तब वाणी ने कहा जो सब प्राणियों के भुवनों का कर्त्ता है वही मैं विस्मित विद्वानों को देख सनातन विष्णु को प्राप्त हुआ हूं ॥ २३ ॥

यः कर्त्ता सर्वभूतानां भुवनानां च सर्वशः ।
विस्मतान् विदुषः प्रेक्ष्यसोहंविष्णुःसनातनः ॥ २३ ॥

तब सब उनकी स्तुति करने लगे। तब भगवान् ने कहा कि क्या चाहिये तब देवताओं ने कहा कि थोड़े परिश्रम से बहुत फल देने वाले व्रतों में उत्तम व्रत कहिये। जिस से विष्णुलोक भी प्राप्त हो। तब भगवान् ने फागुन की शुक्ल पक्ष आमला एकादशी का व्रत बतलाया और कहा कि एकादशी के दिन प्रथम उठ दातौन कर पतित लोगों के दर्शन न करें। फिर तीसरे पहर को नदी तालाब में स्नान करें। फिर माशे या आधेमाशे की परशुराम की सोने की

मूर्ति बनावे फिर घर आकर पूजा करे। फिर सामग्री समेत आमले के वृक्ष के नीचे जावे फिर वहां जाकर चारों ओर मन्त्र पूर्वक शुद्ध कलश को स्थापन करे। पंचरत्न छोड़े। छतुरी, खड़ाऊं रख सफेद चन्दन से पूजा करे। फिर कलश में माला डाल धूप दीप देवे और उसके ऊपर रख लाई से भर परशुराम की मूर्ति को स्थापन करे फिर भक्ति से रात्रि में जागरण कर धर्म के आख्यान स्तोत नाच गीत में वितावे फिर आंवले की विष्णु के १०८ या २८ नामों से प्रदक्षिणा करे फिर ब्राह्मण की पूजा कर परशुराम की छतुरी, खड़ाऊं सब ब्राह्मणों को दे देवे फिर भगवान् से प्रार्थना करे कि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हों और आंवले की प्रदक्षिणा कर विधि से स्नान कर ब्राह्मणों को भोजन करा कुटुम्ब सहित आप भी खावे इस प्रकार करने से जो पुण्य होता है वह सब मैं तुमसे कहता हूं सब तीर्थ सब दानों में जो फल है सब यज्ञों से अधिक फल होता है यह व्रतों में उत्तम व्रत तुम से कहा इतना कह भगवान् अन्तर्द्धान हो गये और ऋषियों ने सम्पूर्ण व्रत किया।

सर्वयज्ञाधिकं चैव लभते नात्र संशयः।
एतद्वः सर्वमाख्यातं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ ६१ ॥
एतावदुक्त्वा देवेशस्तत्रैवांतरधीयत।
तेचापि ऋषियः सर्वे चक्रुः सर्वमशेषतः ॥ ६२ ॥
तथात्वमपि राजेन्द्र कर्तुं मर्हसि सत्तम।
व्रतमेतद्दुराधर्षं सर्वपापप्रमोचनम् ॥ ६३ ॥

१२१ अ० में आमले का माहात्म्य है जो कोई आमले से भूषित मस्तक हाथ मुंह देह में आमलों को धारण करता और उन्हीं को खाता है वह नारायण होता है।

धात्रीफलकृताहारो नरो नारायणो भवेत् ॥ १२ । १२ ॥

जो वैष्णव आंवलों को धारण करता है वह देवताओं का प्रिय होता है तुलसी आंवले को विशेष कर न त्यागे जब तक कण्ठ में माला स्थित रहेगी तब तक भगवान् उसके पास रहते हैं आमला, द्वारिका की मिट्टी, तुलसी जिस के घर में रहती है उसका जीवन सफल है जितने दिन मनुष्य कलियुग में आंवले की माला धारण करता है उतने ही हजार वर्ष वैकुण्ठ में निवास होता है जो

आंवले, तुलसी की दो मालाओं को धारण करता है वह करोड़ कल्प स्वर्ग में वास करता है।

नोट—भूगर्भ पदार्थ विद्या के ज्ञाता इस कहानी पर विशेष ध्यान दें कि विष्णु के थूक से आमले का वृक्ष उत्पन्न हुआ शोक कि ऐसी गढ़ना और व्यास जी निर्माता ? ज्ञात होता है कि पुस्तक निर्माता ने दर्शन शास्त्रों का स्वप्न में भी दर्शन नहीं किया था यदि विष्णु के थूक से आमले का वृक्ष उत्पन्न हुआ तो उस वृक्ष में भी विष्णु कैसे ही गुण होने चाहियें क्योंकि "कारणगुण-पूर्वकः कार्य्यगुणोदयः" अर्थात् जो कारण में गुण होते हैं वही कार्य्य में भी आते हैं।

कविता भी हो तो ऐसी कि आंवले के वृक्ष को साक्षात् विष्णु ही बना दिया (इस जगह पर उन उपमा देने वालों को भी शिर झुकाना पड़ा कि जिन्होंने कमर को बाल से भी पतली लिखा है)।

प्रायः देखते हैं कि ग्रीष्मऋतु में प्रत्येक जातिके प्रत्येक जन आंवलेका येनकेन प्रकारेण सेवन करते हैं तब तो न मालूम कितने नारायण बनगये होंगे और यदि यह नारायण बनगये तो हमारे सनातनधर्मी भाइयों के सब ही पूज्य होंगे आंवले का फल क्या है मानों नारायण बनानेकी गोली है। सनातनधर्मी भाइयो! फिर ऐसे अवसर को क्यों खोते हो एक २ फल खाकर साक्षात् नारायण बनजाओ।

२—क्या सनातनधर्मी भगवान् एकदेशी हैं तब तो यदि सौ दो सौ आदमी माला ही माला धारण करलें तब भगवान् किस २ के पास रहेंगे। यदि तुलसी और आंवलेकी मालासे करोड़ कल्प तक स्वर्ग मिलता तो पूर्व ऋषि, मुनि और महात्मा तपस्याकर नाना प्रकार के कष्ट क्यों उठाते ? सच तो यह है कि इन्हीं असम्भव और आसान नुसखोंने सनातनधर्मी द्विजातियों को सन्ध्या, अग्निहोत्रादिसे छुड़ा शूद्रत्वको प्राप्त करा दिया शोक फिर भी विचार नहीं करते।

पापमोचनी।

लोमशने मानधातासे कहा कि चैतके कृष्ण पक्ष में पिशाच नाशने वाली पाप मोचनी एकादशी कहलाती है॥ पद्म अ० ४६। ४॥

सुनो, पूर्व समय में चैत्ररथ वनमें वसन्त समय में गान्धर्वोंकी कन्या किन्नरों के साथ रमण कर रही थी इन्द्रादि देवता भी क्रीड़ामें लग रहे थे वहीं मेधानाम

ब्रह्मचारी ऋषि थे उनके मोहनेके लिये युक्तियां कर रही थी उनमें से मंजुघोषा नाम उनके स्थान के पास मीठे स्वरों से गाती और काम के बाणों को चलाने लगी और मेधावी मुनिको देख काम के वशीभूत होगई और मुनि भी उसपर मोहित होगये तब मंजुघोषा वीणाको नीचे धर मुनिको लिपट गई। मुनीश्वरने वृक्षमें ललता की नाई लिपटा जान कर रति किया उसके उत्तम रूप को देखकर शिवतत्व चला गया कामतत्व के वश में प्राप्त हो गये। उन कामीने रमण करते हुए रात्रि दिन भी नहीं जाना इस प्रकार मुनिका आचार लोप हो गया और बहुत समय व्यतीत होगया।

न निशां न दिनं सोपि रमन् जानाति कामुकः।
बहुवर्षगतः कालो मुनेराचारलोपतः ॥ २२ ॥

मंजुघोषामुनि से बोली कि मैं देवलोकको जाना चाहती हूं मुनिने कहा कि इस समय प्रदोष समय में जाना चाहती हो प्रातःकालकी संध्या तक हमारे समीप रहो मारे डरके ५५ वर्ष ६ महीने ३ दिन मुनिके साथ रमण कर कहने लगी कि मैं अपने घरको जाऊंगी। मेधावी बोले इस समय प्रभाती है जब तक हम संध्या करें तब तक यहीं स्थित रहो तब वह मुस्कराकर कहने लगी कि आप बीते हुये समय को तो विचार कीजिये तबतो मुनि ५७ वर्ष उसके साथ रमण करते हुये विचार क्रोध कर तपस्याकी नाश होते हुये देख उससे बोले कि तू पिशाची हो इस प्रकार उस को शाप दिया कि हे पापे हे दुराचारे तुझको धिक्कार है॥ २३॥

समाश्च सप्तपंचाशद्गतास्य तया सह।
कालरूपां तु तां दृष्ट्वा तापसः क्षयकारिणीम् ॥ २४॥
स कंपोष्ठो मुनिस्तत्र प्रत्युवाचाकुलेन्द्रियः ॥ २५ ॥
तां शशाप मेधावी त्वं पिशाची भवेति च।
धिक् त्वां पापे दुराचारे कुलटे पातकप्रिये ॥ २६॥

मुनि के शाप से जलती हुई नम्रता से उनकी प्रसन्नता के लिये शाप के अनुग्रह के लिये कहने लगी कि सज्जनों का संग वचनों से होता है आप के साथ मुझे बहुत वर्ष बीत गये इस कारण आप मुझ से प्रसन्न हूजिये तब मुनि बोले कि हे भद्रे शाप के अनुग्रह करने वाला वचन सुनिये मैं क्या करूं हे पापे तूने मेरा तप नाश कर दिया॥ ३८ ॥

शृणु मे वचनं भद्रे शापानुग्रहकारकम् ।
किं करोमि त्वया पापे क्षयं नीतं महत्तपः ॥ ३६ ॥
चैत्रस्य कृष्णपक्षे तु भवेदेकादशी शुभा ।
पापमोचनिकानाम सर्वपापक्षयंकरी ॥ ४० ॥

चैत के कृष्ण पक्ष में पापमोचन नाम एकादशी होती है वह सब पापों को नाशती है। उसके व्रत करने से पिशाचत्व जाता रहता है। ऐसा कह मेधावी पिता के आश्रम को चले गये। पिता च्यवन पुत्र को देख कर बोले पुत्र तूने पुण्य तो सब नाश कर डाला मेधावी ने कहा कि मैंने अप्सरा के साथ रमण कर पाप किया अब हे तात! प्रायश्चित्त कहिये जिस से पाप नाश हो जावे। तब च्यवन बोले कि चैत कृष्ण पक्ष में पापमोचनी एकादशी होती है जिस के व्रत करने से पाप की राशि भी नाश होती है। पिता के वचन सुन उन्होंने व्रत किया जिस से पाप नाश हो गया और तपस्या युक्त होगये। इधर अप्सरा भी व्रत के प्रताप से पिशाचत्व से छूट सुन्दर रूप धारण कर स्वर्ग को चली गई मान्धाता ने कहा जो मनुष्य पापमोचन व्रत को करते हैं तिनके सब पाप नाश हो जाते हैं।

इति श्रुत्वा पितुर्वाक्यं कृतं तेन व्रतोत्तमम् ।
गतं पापं क्षयं तस्य तपोयुक्तो बभूवसः ॥४५॥
साप्येवं मंजुघोषा च कृत्वैतद्व्रतमुत्तमम् ।
पिशाचत्वाद्विनिर्मुक्ता पापामोचनिकाव्रतात् ॥
दिव्यरूपधरा सा वै गतान्तकेवराप्सराः ॥४६॥
पापमोचानिकां राजन् ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः ।
तेषां पापं च यत्किञ्चित्तत्सर्वं च क्षयं व्रजेत् ॥ ४७ ॥

हे राजन्! पढ़ने सुनने से हजार गौओं का फल होता है और ब्राह्मण के मारने से, सोने को चुराने, मदिरा पीने, गुरु पत्नी से गमन करने आदि पाप-युक्त मनुष्य निर्दोष हो जाते हैं।

पठनाच्छ्रवणाद्राजन्! गौसहस्रफलं लभेत् ॥

ब्रह्महाहेमहारी च सुरापो गुरुतल्पगः ॥४८॥

नोट—कहिये सनातनधर्मी भाइयो अब भी आपको कुछ शङ्का शेष रह गई कि प्राचीन समय में आपके पौराणिकी मनुष्य प्रायश्चित्त के द्वारा शुद्ध होते थे। पौराणिक भाइयो यदि यह कथा सत्य है तो कृपा कर अपने पतित भाइयों को क्यों नहीं व्रत कराकर शुद्ध करते ?

धर्म शास्त्र में परस्त्री गमन का महापाप लिखा है जो कि ऐसे साधारण व्रतों से शुद्ध नहीं हो सकता किन्तु कर्मानुकूल अवश्य फल भोगने पड़ेंगे। इसी प्रकार ब्रह्महत्या, गुरुपत्नी गमन जो कि महापातकों में गिनाये गये हैं एकादशी के व्रत से छूटने लिखे हैं। ऐसी शिक्षा घोर पाप में प्रवृत्त कराने वाली और मनुष्यों को दुष्कर्म से निर्भय करने वाली नहीं तो क्या ?

कामदा।

पूर्व समय में नागपुर नाम नगरी में पुण्डरीक इत्यादि नाग रहते थे वहां का पुण्डरीक राजा था जिस की गन्धर्व, किन्नर, अप्सरा सेवा करती थीं जिन में से ललिता, ललित एक दूसरे से प्रसन्न धन, धान्य से युक्त रहते थे एक दिन ललित ने गीत गाते हुए ललिता का स्मरण किया जिस के कारण गान में आनन्द न आता था जिस को कर्कट ने जान कर पुण्डरीक से कहा। सर्पों के राजा पुण्डरीक ने क्रोध में आ श्राप दिया कि रे दुष्ट तू पुरुषों का खाने वाला राक्षस हो जा। तब वह राक्षस हो गया। ललिता ने उसकी बुरी सूरत को देख दुःखित हो पति के साथ वन में घूमने लगी और वह वनमें पुरुषों को खाने लगा, ललिता एक सुन्दर स्थान को देख जहां शांति देह मुनि रहते थे नमस्कार कर उनके आगे खड़ी हो गई। मुनि ने उसको दुःखित देख वृत्तान्त पूंछा तब उसने सब वृत्तान्त कहते हुये कहा कि मेरा स्वामी राक्षस हो गया है जिस से मुझ को बड़ा क्लेश रहता है मुझको कोई ऐसा व्रत बतलाइये कि जिससे वह राक्षसपन से छूट जाय। तब ऋषि ने कहा कि तुम चैत्र मास शुक्ल पक्ष की कामदा एकादशी का व्रत विधि पूर्वक करो वह पुण्य स्वामी को दो उसने वैसा ही किया द्वादशी के दिन ब्राह्मण के समीप भगवान् के आगे अपने पति के तारने के लिये कहा कि मैंने कामदा एकादशी का व्रत किया है उसके पुण्य के प्रभाव से मेरे पति की पिशाचता दूर हो जाय।

दत्ते पुण्ये चणात्तस्य शापदोषः प्रयास्यति ।
इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं ललिता हर्षिताभवत् ॥३१॥
उपोष्यैकादशीं राजन् द्वादशीं दिवसे तथा ।
विप्रस्यैव समीपेतद्वासुदेवस्य चाग्रतः ॥३२॥
वाक्यमुवाच ललिता स्वपत्युस्तारणाय वै ।
मया तु तद्व्रतं चीर्णं कामदाया उपोषणाम् ॥३३॥
तस्य पुण्यप्रभावेन गच्छत्वस्य पिशाचता ।
ललितावचनादेव वर्त्तमानोपि तत्क्षणे ॥३४॥

उसका सोने और रत्नों के समान उज्वल रूप होगया वह ललिता के साथ रमण करने लगा। ऐसा जान कर नृप श्रेष्ठ यह व्रत नियम से करना चाहिये।

लोक हित के लिये तुम्हारे सन्मुख कहा यह ब्रह्महत्यादि पापों और पिशाचता का नष्ट करने वाला है। तीनों लोकों में इस से श्रेष्ठ कोई नहीं तथा पढ़ने सुनने से वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है।

लोकानां तु हितार्थाय तवाग्रे कथिता मया ।
ब्रह्महत्यादि पापघ्नी पिशाचत्व विनाशनी ॥ ३८ ॥
नातः परतरा काचित्त्रैलोक्ये स चराचरे ।
पठनाच्छ्रवणाद्राजन् वाजपेय फलं लभेत् ॥ ३९ ॥

नोट—यद्यपि लोक में भी यही देखा जाता है कि कर्मका फल करने वालोंको ही मिलता है और यह वेदकी भी आज्ञा है परन्तु इस कहानी में भी औरों की भांति एकका किया पुण्य दूसरे को देना लिखा है जो कि वेद विरुद्ध है।

वरूथिनी ।

वैशाख कृष्ण पक्ष में वरूथिनी एकादशी होती है सर्वदा इसके व्रत करने से पापकी हानि, सौभाग्यकी प्राप्ति, गर्भ के वासकी छुड़ाने वाली मान्धाता आदि इसीके प्रतापसे स्वर्गको गये। भगवान् महादेव भी ब्रह्मकपाल से छूट गये जो मनुष्य दश हजार वर्ष तक तप और जो सूर्य ग्रहण के समय कुरुक्षेत्र में एक भार

सोने के पुण्यका फल होता है। सब दानों में विद्यादान का श्रेष्ठ फल है। वरूथिनी एकादशीका करने वाला उन सबके समान फलको पाता है। जो कन्याको गहनों से युक्तकर पुण्य मिलता है उसी फलको इस व्रतका करने वाला पाता है। व्रत रखने वाला कांसा, मांस, मसूर, चना, कोदों, साग, मधु, पराया अन्न, दूसरीबार भोजन, मैथुन दशमीको छोड़ दे। जुआ, पान, दातौन, पराया अपवाद चुगली, चोरी, जीव मारना, रति, क्रोध, झूंठ यह एकादशी में छोड़ दे। कांस, मांस, मदिरा, शहद, तेल, पतितसे बोलना, कसरत, प्रवास, दूसरी बार भोजन और पराया अन्न यह द्वादशी में छोड़ देवे। इस विधिसे जो वरूथिनी का व्रत करता है उसके सब पापोंका नाश कर अन्त में भगवान् नाश रहित गति देते हैं जो रात्रि में जागरणकर भगवान् को पूजते हैं उनके सब पाप छूट जाते हैं तिससे पापोंसे डरे हुये को सब प्रकार से यह व्रत करना चाहिये और पढ़ने सुनने से हज़ार गौदान का पुण्य होता है और सब पापों से छूटकर विष्णुलोक को जाते हैं।

सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते यांति परमां गतिम्। अध्याय०।४८।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्या पापभीरुभिः ॥ २४ ॥
अपारि तनयाद्भीरो नरः कुर्याद्वरूथिनीम्।
पठनाच्छ्रवणाद्राजन् गोसहस्रफलं लभेत् ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥ २५ ॥

नोट—इस कथा के पढ़ने से ज्ञात होता है कि मांस, मदिरा एकादशी के दिन एवं द्वादशी के दिन को छोड़ देवे तो क्या शेष दिनों में सेवन रहे? यदि एक महीने में दो दिन मांस मदिरा छोड़ भी दें तो क्या केवल दो ही दिनके छोड़ने और इस व्रत के करने से ऐसे कर्मों से जिनसे कि द्विजत्व से शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है निवृत्त हो विष्णु लोक को प्राप्त हो सकता है। सत्य तो यह है कि ऐसी लालची शिक्षाओंने ही मनुष्योंको इन दुष्ट कर्म्मोंकी ओर प्रवृत्त कर दिया।

हमने प्रायः पौराणिक भाइयों को यह कहते सुना है कि "समरथ को नहिं दोष गुसाईं। रवि पावक सुरसरि की नाईं॥" परन्तु इस कथा में विचित्रता और इसके विपरीत यह कि महादेवजी भी ब्रह्मकपाली के शाप से शापित हो इस उपरोक्त एकादशी के व्रत से मुक्त हुये। विचार शील पुरुषो! विचारो तो

सही कि जिनको आप साक्षात् भगवान् मानते हैं वह भी इस से शुद्ध हुये तब वे अपने उपासकों को कैसे शुद्ध वा मुक्त कर सकते हैं। क्या यह महादेव की महिमा के परस्पर विरुद्ध नहीं है इसी से तो हम कहते हैं कि पुराण एक दूसरे के विरुद्ध होने एवं आपके देवताओं को लांच्छन लगाने से किसी विरोधी के बनाये जान पड़ते हैं न कि व्यासकृत।

मोहिनी।

रामचंद्र के पूंछने पर वशिष्ठ ने कहा कि वैशाख के शुक्ल पक्ष की मोहिनी एकादशी सब पापों के नाश करने वाली है। अध्याय ४८॥

हे राम! सरस्वती के किनारे भद्रावती नाम नगर में द्युतिमान् राजा हुआ वहां धनपाल नाम एक बनिया रहता था, जो विष्णु का भक्त मन्दिर तालाब का बनवाने वाला पुण्यात्मा था जिसके पांच पुत्र थे, जिनमें पांचवा धृष्टबुद्धि था, जो पराई स्त्रियों से रति की लालसा करने वाला, जुआ खेलने वाला, अन्याय में पिता के द्रव्य का नाश करने वाला, मदिरा पीने वाला, वेश्या से प्रीति करने वाला इत्यादि दुष्ट स्वभावी था, जिसको पिता और बांधवों ने निकाल दिया तब वह नगर में चोरी करने लगा पकड़े जाने पर कई बार राजा ने छोड़ भी दिया तिस पर भी चोरी न छोड़ा फिर पकड़े जाने पर राजा ने उस को देश से निकाल दिया। वह भूख प्यास से व्याकुल हो जंगली जानवरों को मार २ कर अपना निर्वाह करने लगा। किसी पुण्य के प्रभाव से कौडिन्यजी के आश्रम पर पहुँच गया महात्मा वैशाख में गंगा स्नान कर आये थे, उनके कपड़े की बूंद उसके ऊपर गिरी उसी से उसके अशुभ पाप नष्ट हो गये तब तो हाथ जोड़ कर कौडिन्य से बोला॥ २१॥

माधवे मासि जाह्नव्याः कृतस्नानं तपोधनम्।
आससाद धृष्टबुद्धिः शोकभारेण पीडितः॥ ३०॥
तद्वस्त्रबिंदुस्पर्शो नगत पापोहता शुभः।
कौडिन्य स्याग्रतः स्थित्वा प्रत्युवाच कृतांजलि॥ ३१॥

कि हे ब्राह्मण हमारे ऊपर दया करके कहो कि जिस पुण्य के प्रभाव से मुक्त होवे। महात्मा ने कहा तुम सुनो वैशाख के शुक्ल पक्ष में मोहिनी एकादशी

होती है तुम उस का व्रत करो। इस व्रत के करने से देहधारियों के बहुत जन्मों के इकट्ठे पाप मेरु के समान भी नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकारके वचन सुन प्रसन्न चित्त विधि पूर्वक व्रत कर पाप रहित हो सुन्दर देह धारण कर गरुड़ पर चढ़ सब उपद्रवों से रहित विष्णुलोक को चला गया ३४, ३५, ३६, ३७, ॥

एकादशी व्रतं तस्याः कुरु मद्वाक्यनोदितः ।
मेरुतुल्यानि पापानि क्षयं गच्छंति देहिनाम् ॥ ३४ ॥
बहुजन्मार्जितान्येषा मोहनी समुपोषिता ।
इति वाक्यं मुनेः श्रुत्वा धृष्टबुद्धिः प्रसन्नधीः ॥ ३५ ॥
व्रतं चकार विधिवत्कौडिन्यस्योपदेशतः ।
कृते व्रते नृपश्रेष्ठ गतपापो बभूवसः ॥ ३६ ॥
दिव्यदेहस्ततो भूत्वा गरुडोपरिसंस्थितः ।
जगाम वैष्णवं लोकं सर्वोपद्रव वर्जितम् ॥ ३७ ॥

हे रामचन्द्र ! इस प्रकार उत्तम मोहिनी व्रत है चराचर त्रिलोकी में इससे बढ़ कर कोई नहीं। यज्ञादिक तीर्थदान इस की सोलहवीं कला को भी नहीं प्राप्त होते पढ़ने सुनने से हजार गौओं का फल होता है।

इति दृशं रामचन्द्र! उत्तमं मोहिनी व्रतम् ॥
नातः परतरं किंचित्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ३८ ॥
यज्ञादितीर्थदानानि कलांनर्हंति षोडशीम् ।
पठनाच्छ्रवणाद्राजन् गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ३९ ॥

नोट—इस कथा के पढ़ने से स्पष्ट प्रकट होता है कि गुरु वशिष्ठ की आज्ञानुसार श्रीरामचन्द्रजी ने भी सीता के वियोग से भयभीत हो कर यही व्रत किया है। सब विचारशील सुजान जन विचार सकते हैं। उस पहिली कथा में तो महादेव शाप से छूटे और इस में रामचंद्र दुःख से छूटे तब भी कोई संशय शेष रहा कि यह ईश्वर थे। प्यारे भाइयो कुछ बुद्धिसे काम लीजिये और फिर देखिये वेद आपको क्या बता रहा है॥

अपरा ।

ज्येष्ठ कृष्णपक्षकी एकादशी का नाम अपरा है जो अपार फलों की देती है। ब्रह्महत्या, गोत्र का नाश करने वाला, गर्भ गिराने, पराई स्त्री से प्रीति, झूंठी गवाही देने, झूठ बोलने, झूंठ वेद शास्त्र का पढ़ने हारा, झूंठा ज्योतिषी और वैद्य यह सब नरक को जाते हैं परन्तु अपरा के सेवन से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। अध्याय ५० ॥

मकरके सूर्य्य, माघस्नान प्रयागसे, काशी ग्रहणसे, गया में पिण्ड देनेसे, गोमती स्नान से, सिंह कन्या की बृहस्पतिमें कृष्णावेणी के स्नान करने से, कुम्भ में केदारके दर्शन से, बदरीनारायण की यात्रा और सेवन से, कुरुक्षेत्र में सूर्य्य ग्रहण से, हाथी, घोड़ा, सोने के दान से, दक्षिणा समेत यज्ञ करने से जो फल मिलते हैं वैसाही फल अपराके व्रत से प्राप्त होता है। आधी ब्याई हुई गौके देने, सोना और पृथिवीके देनेसे जो फल मिलता है वही अपरासे होता है। यह अपरा पापरूपी वृक्ष काटने के लिये कुल्हाड़ी है। पापरूपी इंधन जलाने में अग्निरूप है। पापरूप अंधेरा दूर करने के लिये सूर्य्यरूपी है॥ ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८ ॥

एकादशी के व्रत के विना फिर जन्म, मरण होता रहता है अपराका व्रत कर भगवान्की पूजा करने से सब पापों से छूट विष्णु लोक को जाता है॥

जायन्ते मरणं यैव एकादश्या व्रतं विना।
अपरां समुपोष्यैव पूजयित्वा त्रिविक्रमम् ॥ १९ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥ २० ॥

नोट—प्यारे भाइयो यदि इस व्रत का इतना प्रभाव था तो महाभारत के समय श्रीकृष्णचन्द्र महाराजने क्यों अर्जुन को यह उपदेश दिया कि रण से भागने वाले क्षत्री की मुक्ति नहीं होती अब इसकी सत्यता आप सज्जन लोग स्वयं ही विचारलें एवं महापातकों की भी जिसके लिये कि महात्मा तुलसीदास तक लिख रहे हैं कि "जो जस कीन्ह सो तस फल चाखा" परन्तु इसमें सबके विपरीत लिखा है।

———:#:———

निर्जला।

व्यासजी युधिष्ठिर से कहते हैं, मानवधर्म, वैदिकधर्म तुमने सुना, कलियुगमें इनके करने की सामर्थ्य नहीं। इस लिये सुखपूर्वक थोड़ा उपाय, थोड़े धन, थोड़े क्लेश में महाफल देने वाला सब पुराणों का सारभूत यह है कि पक्षों को एकादशी में भोजन न करे। द्वादशीमें पवित्र फूलोंसे भगवान् को पूजे, ब्राह्मणों को भोजन करा पीछे आप भी भोजन करे। सूतक और अशौच में भोजन करना न चाहिये, जिनको स्वर्ग की इच्छा हो वह जब तक जियें इसको करें, चाहे पापी, दुराचारी, धर्म से हीन हो परन्तु एकादशी में भोजन न करे तो वह यमराज के पास नहीं जाता ॥ ६ ॥ अध्याय ५१ ॥

अपि पापा दुराचाराः पापिष्ठा धर्म्मवर्जिताः ।
एकादश्यां न भुंजानास्ते यान्ति यमान्तिकम् ॥६॥

यह सुन भीमसेनने कहा कि हमसे सब भाई कहते हैं। परन्तु हमसे भूख नहीं सधती और स्वर्गजाने की इच्छा भी है इस लिये आप निश्चय करके ऐसा कोई कार्य्य बतलाइये जिससे मेरा भी कल्याण हो। तब व्यासने कहा कि वृष मिथुन के सूर्य्य में जब ज्येष्ठ मास में एकादशी हो तो विना जलके व्रत करे और आचमन भी न ले। नहीं तो व्रत नष्ट होजाता है, उदय पर्य्यंत जो मनुष्य जलको छोड़ देता है वह बारह द्वादशियों के फल को पाता है ॥ २१ ॥

उदयादुदयं यावद्वर्जयित्वोदकं नरः ।
श्रूयतां समवाप्नोति द्वादशद्वादशी फलम् ॥२१॥

जो मनुष्य विना जलके एकादशी व्रत करता है वह सब पापों से छूट जाता है। जो उस दिन स्नान दान करता है वह नाश रहित है, जो एकादशी को अन्न भोजन करता है वह पाप भोगता है ॥ ४२ ॥

एकादश्यां दिने योऽन्नं भुंक्ते पापं भुनक्ति सः ॥४२।
इहलोके सचाण्डालो मृतः प्राप्नोति दुर्गतिम् ।

इस लोकमें चांडाल मर कर दुर्गतिको प्राप्त होता है जो ज्येष्ठ मास के शुक्लपक्ष द्वादशी में व्रत कर दान देते हैं वह परम पद पाते हैं। ब्राह्मणका मारने वाला, मदिरा पीने वाला, चोर, गुरुसे वैर करने आदि सब पापों से निर्जला

व्रत करने वाले छूट जाते हैं। जिन्होंने इस का व्रत नहीं किया उन्होंने आत्मा से वैर किया वेही पापी चोर हैं ॥ ५० ॥

ब्रह्मघ्नो मद्यपः स्तेनो गुरुद्वेषी सदानृती ॥ ४५

मुच्यंते पातकैः सर्वै निर्जलायैरुपोषिता।

विशेषं शृणु कौंतियनिर्जलैकादशी दिने ॥ ४६ ॥

जो शांत, दांत, दान में परायण, रात्रि में जागरण कर भगवान् को पूजते हैं। वह सौ आने वाली बीती हुई पीढ़ियों को और अपने को वासुदेव के मन्दिर में प्राप्त करता है।

ऐसा ही बाराह पुराण पूर्वार्द्ध अध्याय ३५ में लिखा है॥

नोट–कलियुगमें यदि वैदिक धर्म करने की सामर्थ्य नहीं तो शंखा सुरसे वेदों के बचाने के प्रयत्न के लिये आपके पौराणिकी ईश्वर को वाराहका अवतार क्यों लेना पड़ा? मित्रवर्य्य क्या इससे यह स्पष्ट प्रकट नहीं होता है कि वेदों की महिमा गिराने और नवीन मत चलाने को यह विरोधियों एवं आलसियों ने बातें प्रकट करदीं वरन् सनातन वेद क्या किसी जाति व कालविशेषके लिये हो सकते हैं कदापि नहीं।

२—इससे स्पष्ट प्रकट है कि यह किसी ऐसे पुरुष की रचना है कि जो पुर्नजन्म को नहीं मानता वरन् सौ पीढ़ी आगे व पीछेकी न लिखता। वाहरी बुद्धि॥

———:०:———

योगिनी।

आषाढ़ के कृष्णपक्ष में योगिनी नाम एकादशी पापों को नाशने वाली होती है। यह संसाररूपी समुद्र में डूबे हुओं को नौका, सनातनी व्रत करने वालों को त्रिलोकी में सारभूत है। अलका में कुबेर जी महाराज महादेव को पूजते थे। हेममाली फूलों को लाया करता था। एक दिन वह रूपवती विशालाक्षी स्त्री के प्रेम में डूब कर मध्याह्न समय तक फूल नहीं ले गया तब कुवेर ने यक्षको भेजा कि हेममाली कहां है यक्ष ने घर आकर जाना कि वह स्त्री पर मोहित होने के कारण घर ही में पड़ा है। कुबेर ने यह सुन कर फिर यक्ष से उस को बुलाया। वह डरता हुआ उनके सामने गया। कुवेर ने क्रोधित होकर कहा कि हे दुष्ट! तू ने देवों की निंदा की। इस लिये स्त्री वियोग हो कर तेरे अठारह कोढ़ हो जावें तू इस स्थान से चला जा। कुबेर के ऐसे वचन कहते ही वह उस

स्थान से गिर गया और भारी दुःखों अर्थात् कोढ़ से पीड़ित हो दुःखी होने लगा ॥ १५, १६ ॥ अध्याय ५२ ॥

अष्टादशकुष्टवृत्तो वियुक्तः कांतया तथा ।
अस्मात्स्थानादपध्वंस्तो गच्छस्वप्रमथाधम ॥ १५ ॥
इत्युक्तैर्वचनैस्तस्य तस्मात्स्थानात्पपातसः ।
महादुःखाभिभूतश्च कुष्ठैः पीडितविग्रह ॥ १६ ॥

वह इस दुःख से दुःखी घूमता हुआ हिमालय पर गया और वहां मार्कण्डेय महर्षि को देखा। उन्होंने पूछा कि क्या दशा है ? तब उस ने सब वृत्तान्त कहा। मार्कण्डेय बोले कि तू ने सत्य ही कह दिया इस लिये कल्याण देने वाली योगिनी एकादशी का व्रत कर मार्कण्डेयजी के उपदेश से उसने यथोचित व्रत किया तो १८ कोढ़ जाते रहे ॥ ३१ ॥

मार्कण्डेयोपदेशेन व्रतं तेन कृतं यथा ।
अष्टादशैव कुष्ठानि गतानि तस्य सर्वशः ॥ ३१ ॥

वह जन ८८ हजार विप्रों को भोजन कराता है जो योगिनी व्रत करता है उनका फल समान होता है ॥ ३३ ॥

अष्टाशीति सहस्राणि द्विजान्भोजयते तु यः ।
तत्समं फलमाप्नोति योगिनीव्रतकृन्नरः ॥ ३३ ॥

नोट—सनातनधर्मी भाइयों को चाहिए कि इस कोढ़ की दवा को पेटेण्ट कराकर सनातनधर्म गजट से विज्ञापन निकाल दें क्योंकि सम्भव है कि सिविलसरजन और वैद्य लोगों ने इस दवा को न जाना हो हरिद्वार और हृषीकेश के मध्य में बहुत से कुष्टी हैं क्या कोई पद्म पुराणी एकादशी का व्रत करने वाला वहां नहीं रहता वा जाता है ? कृपा करके कोढ़ियों को यह दवा बतादें।

बहुधा सनातनी ब्राह्मण देवता यह कहते हैं कि आर्य्यसमाजियों ने न्यौते बन्द कर दिये हमारी समझ में न्यौते बन्द कराने वाली यह एकादशी है जिसके व्रत रहने से ८८ हजार विप्र भोज का फल मिलता है ।

देवशयनी ।

आषाढ़ शुक्लपक्ष की एकादशी का नाम देवशायनी है यह पापों के नाशने के लिये ब्रह्मा ने इस को सबसे उत्तम रचा है इस से श्रेष्ठ मोक्षदायक कोई नहीं है ॥ ४ ॥ अध्याय ५३ ॥

पापिनां पापनाशाय स्रष्टाधात्रा महोत्तमा ।
अतःपरा न राजेन्द्र ! वर्त्तते मोक्षदायिनी ॥ ४ ॥

इस लिये वैष्णव को चाहिये कि आषाढ़ के शुक्ल पक्ष में एकादशी का अच्छे प्रकार व्रत करें क्योंकि इस के पुण्य की गणना में ब्रह्मा भी असमर्थ हैं ।

नास्याः पुण्यस्य संख्यानं कुर्तुं शक्तश्चतुर्मुखः ।
एवं यः कुरुते राजन्नेकादश्यां व्रतोत्तमम् ॥२०॥
सर्वपापहरं चैव भुक्तिमुक्ति प्रदायकम् ॥ २१ ॥

नोट—इस से श्रेष्ठ मोक्षदायक कोई नहीं तो क्या और सब उपरोक्त झूंठी हैं ब्रह्मा जिन्होंने कि जगत् रचा वह भी उसके गुण गिनने में असमर्थ। महिमा हो तो यहां तक !

—————— :o: ——————

कामिका ।

श्रावण कृष्ण पक्षकी एकादशीका नाम कामिका है उस दिन गङ्गा, काशी, नैमिषारण्य, पुष्कर इत्यादि में जो फल होता है वह कृष्ण के पूजन से होता है जो मनुष्य पापरूपी कीचड़से व्याकुल संसाररूपी समुद्रमें डूबे हुयेहैं तिनके उद्धार के लिये कामिका व्रत उत्तम है इस से बढ़कर कोई पवित्र और पापनाशिनी नहीं है जो आध्यात्मिक विद्या में प्रवीण हैं उन को जो फल मिलता है वह कामिका व्रत करने वालों को मिलता है । जागरण करने वाले यमराज को नहीं देखते । जो फल एक भार सोना और चौगुनी चांदी देने से मिलता है वह तुलसीदल के पूजन से मिलता है. जो रात्री में दीपक जलाता है उस का फल अनगणित है और जो आज के दिन कृष्ण के आगे दीपक जलाता है उस के पितर स्वर्ग में अमृत से तृप्त होते हैं । जो घी या तेल के दीपक को जलाता है वह सौ करोड़ दीपों से पूजित सूर्य्य लोक को प्राप्त होते हैं । इस व्रत के करने से

नोट—यदि कामिका का ऐसा माहात्म्य था तो श्रीकृष्ण महाराजने इस का अर्जुन को उपदेश न कर योगाभ्यास की शिक्षा क्यों दी ? ॥

बुरी योनियों में नहीं जाता । योगी लोग इस के व्रत को करके मोक्ष को पाते हैं ॥ अध्याय ५४ ॥

न पश्यति कुयोनिं च कामिकाव्रतसेविनाम् ।
कामिकाया व्रतैर्चीर्णै कैवल्यं योगिनो गतः ॥१८॥

पुत्रदा ।

श्रावण के शुक्ल पक्षमें पवित्ररूपिणी पुत्रदा एकादशी होती है । जिस के सुनने से वाजपेय यज्ञ का फल होता है पूर्व समय में द्वापर युग के आदि में महिष्मती पुरमें महीजित नाम राजा था । पुत्र हीन होने से चिंता युक्त रहता था । एक दिन प्रजा पुरुषों से उसने कहा कि इस जन्म में अन्याय से धन नहीं लिया । प्रजा को पुत्रों के बराबर पालन किया, धर्म से पृथ्वी को जीता, सज्जनों की सेवा, शत्रुओं को दण्ड दिया, परन्तु हमको किस कारण से पुत्र नहीं मिला सोतो कहिये, यह सुन प्रजा और पुरोहितों ने सम्मति कर गहन वन को गये वहां ऋषियों के आश्रम को देख रहे थे, इतने में धर्मतत्व के जानने वाले महात्मा लोमश जिनकी सबने वन्दना की तब उन्होंने कहा कि अपना कारण कहिये तो उन्होंने उपरोक्त सब वृत्तान्त कह कर प्रार्थना की कि अब जिस प्रकार से राजा के पुत्र हो उसको आप कहिये । महात्मा लोमश मुहूर्तमात्र ध्यान कर राजा के पूर्व जन्म का हाल जान बोले कि यह पूर्व जन्म में क्रूर धनहीन बनिया था वाणिज्य के अर्थ एक गांव से दूसरे गांव को जाते थे । ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की दशमी को दोपहर के समय प्यास से व्याकुल था जल पीने को तालाब पर गया, उसी समय एक बछड़ा सहित एक गाय पानी पीने को आई जो प्यास, घाम से व्याकुल थी उस जल पीती हुई को खेद कर आप जल पीने लगा, उसी कर्म से यह पुत्र हीन राजा है ॥

तृष्णातुरानिदाघार्ता तस्यमम्बु पपौतुसा ।
पिबंतीं वारयित्वातामसौ तोयं पपौ स्वयम् ॥२६॥
कर्मणा तेन पापेन पुत्रहीनो नृपोऽभवत् ।
कस्यापिजन्मनः पुण्यात्प्राप्तं राज्यमकंटकम् ॥

तब सबने कहा पुण्य से पाप नाश हो जाते हैं इसी लिये आप के

उपदेश के प्रसाद से राजा के पुत्र हो । तब लोमश बोले कि श्रावण के शुक्ल पक्ष में पुत्रदा एकादशी वांछित फल को देने वाली है उस का व्रत सब लोग कीजिये ॥ ४२ ॥

श्रावणे शुक्लपक्षे तु पुत्रदानामविश्रुता ।
एकादशी वांछितदा कुरुध्वं तद्व्रतं जनाः ॥

यह सुन सब मनुष्य दण्डवत कर नगर में आये । विधि पूर्वक सबने व्रत किया और उस का पुण्य राजा को दे दी जिस के प्रताप से रानी के गर्भ रहा और तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ ॥

तस्य पुण्यं सुविमलं दत्तं नृपतये जनैः ।
दत्ते पुण्येऽथसाराज्ञी गर्भमाधत्त शोभनम् ॥२४॥
प्राप्त प्रसवकाले सा सुषुवे पुत्रमूर्जितम् ॥४५॥

इस लिये जो इस व्रत को करता है वह इस लोक में पुत्र सुख पाकर परलोक में स्वर्ग पाता है । अध्याय ५५ ॥

श्रुत्वामाहात्म्यमेतस्यानरः पापात्प्रमुच्यते ।
इहपुत्रसुखं प्राप्यपरत्र स्वर्गतिंभवेत् ॥४४॥

नोट—न जाने महर्षि वशिष्ठ और श्रृङ्गी ऋषि ने क्यों महाराज दशरथ को वृथा कष्ट दे पुत्रेष्टि यज्ञ कराया । क्या उस समय में व्यास कृत पुराण उपस्थित न थे परन्तु जो कुछ हो अब तो उपस्थित हैं सनातन धर्मी भाइयों के लिये यह एकादशी पुत्रों के देने वाली है इस लिये जिन सनातनधर्मी भाइयों को पुत्र की इच्छा हो इसी से पुत्र प्राप्त करलें । फिर न जाने ग्रहों की दुकान क्यों खोलते हैं क़बरों और मदार इत्यादि को क्यों पूजने जाते हैं ।

———:#:———

अजा ।

भादोंकी कृष्णपक्षकी एकादशीको अजा कहतेहैं । पूर्व समयमें सब पृथिवीका राजा हरिश्चन्द्र हुआ जो सत्य प्रतिज्ञा करने वाला था किसी कर्म्मसे राज्यसे भ्रष्ट होगया तो उसने अपनेको एवं स्त्री और पुत्रको-चांडालके हाथ बेच डाला । जहां वह मुर्दोंके कपड़े लेता था परन्तु सत्यको वहां भी नहीं छोड़ा । इस कामको

करते हुये वर्ष व्यतीत होगये। एक दिन दुःखी हो कहने लगा कि क्या करूं ? इतनेमें गौतम ऋषि वहां आगये और हाल सुनकर महात्माने कहा कि भादोंके कृष्ण पक्षमें अजा एकादशी आने वाली है हेराजन्! इसके व्रतको करजागरण करो पापों का नाश हो जावेगा इतना कह मुनि अंतर्ध्यान हो गये राजा ने मुनि की आज्ञानुसार व्रत किया जिससे सबपापों का नाश हो गया।

मुनिर्वाक्यं नृपः श्रुत्वा चकार व्रतमुत्तमम्।
कृते तस्मिन्व्रतेराज्ञः पापस्यांतोभवत्क्षणात्॥ १८ ॥

राजाका दुःख जाता रहा। स्त्री मिलगई, पुत्र जी गया। आकाशमें नगाड़े बजे। फूलोंकी वर्षा हुई और अकंटक राज्य राजाने पाया और पुर परिवार समेत स्वर्ग भी मिला। जो मनुष्य इसका व्रत करते हैं वे स्वर्गको जाते हैं। इसके पढ़ने सुनने से अश्वमेध का फल होता है। अध्याय ५६॥

सर्वपापविनिर्मुक्ता स्त्रिदिवं यांति ते नृप।
पठनाच्छ्रवणाद्वापि अश्वमेधफलं लभेत्॥ २३ ॥

पद्मा।

भाद्रपद शुक्लपक्षकी एकादशीको पद्मा कहते हैं ब्रह्माने नारदसे कहा कि सूर्य बंशमें मानधाता नाम राजा हुये जो धर्मसे प्रजाका पालन करते थे। बहुत काल बीतने पर ३ वर्ष तक उसके राज्यमें वर्षा नहीं हुई जिससे प्रजा अति दुःखित हो राजासे प्रार्थना करने लगी कि महाराज आपसे धर्मात्मा राजा होने पर न मालूम वर्षा क्यों नहीं होती आप उपाय सोचिये तब राजा गहन वनको गया मुनियों के आश्रमोंमें घूमता हुआ अंगिराऋषिके समीप पहुँचा नमस्कारादि कर अपना सब वृतान्त कहा तब ऋषि बोले कि यह युगोंमें उत्तम सत्युग है इससे मनुष्य धर्ममें परायण हैं धर्म चारपावों का है॥ अध्याय ५७॥

इसलिये ब्राह्मणही तप करें तुम्हारे राज्य में शूद्र तप कर रहा है इस हेतु वर्षा नहीं होती इसके मारने का यत्न कीजिये तो दोष जातारहै।

नोट—क्या रजा हरिश्चन्द्रने पापोंके फलसे दुःख पाया अथवा विश्वामित्र को दान दे वचन न लौटनेसे ? प्रकट होता है कि एकादशीका माहात्म्य बढ़ानेको यह कथा लिख दी है वास्तविक कर्म्मोंका फल तो अवश्य भोगनाही पड़ता वरन् एकादशीके व्रती सब सुखीही देखे जाते।

अस्मिन् युगे तपोयुक्ता ब्राह्मणानेतरेजनाः ।
विषये तत्र राजेन्द्र वृषलोयं तपस्यति ॥ ३० ॥
एतस्मात्कारणाश्चैव न वर्षति बलाहकः ।
कुरु तस्य वधे यत्नं येन दोषः प्रशाम्यति ॥ ३१ ॥

यह सुन राजाने कहा कि निरपराधीको मारना उचित नहीं और कोई उपाय बताइये तब मुनिने कहा अच्छा आप भादों के शुक्ल पक्ष की एकादशी पद्मा का व्रत करो जिस के प्रभाव से वर्षा होगी और सब प्रकार की सिद्धियां मिलेंगी राजाने अपने राज्यमें पहुँच कर सब प्रजा समेत व्रत किया ।

भाद्रमासे सिते पक्षे पद्मावृतमथा करोत् ।
प्रजाभिः सहसर्वाभिश्चातुर्वर्ण्यसमन्वितः ॥ ३६ ॥

जिससे मेघ बर्षे अन्न अच्छा उत्पन्न हुआ ॥ ३७ ॥

एवं वृते कृते राजन् प्रववर्ष बलाहकः ।
जलेन प्लाविता भूमिरभवत्सस्यशालिनी ॥ ३७ ॥

इसलिये इस उत्तम व्रत को करना चाहिये । दही, भात, जलसे भरा कलश, छाता, जूते, ब्राह्मणको दे प्रार्थना करे कि हे गोविन्द आप सुख दीजिये ।

इन्द्रा ।

क्वारकृष्णपक्षमें इन्द्रा नाम एकादशी होती है जिससे भारी पाप नाश होजाते हैं । जो पितृ नरकमें हैं उनको गति देती है ॥ अध्याय ५८ ॥

नोट– वाहरे फिलासफ़ी शूद्र तो तप करके परमात्माका स्मरण करे और पौराणिकों अंगिरा ऋषि उसके मारनेका राजाको उपदेश दें विचारशीलो आप विचार सक्ते हैं कि शूद्रकी तपस्यासे मेघबन्द हो सदुपदेश ऋषि तपस्वीको मारनेकी आज्ञा दें । यदि ऐसा ही था तो वाल्मीकादि कौन थे ? हमारे ब्राह्मण भाइयोंको उचित है कि जहां २ पानीकी बर्षा न हो वहीं इस व्रत के प्रभावसे पानी वर्षा देवें क्योंकि भारतवर्षके मनुष्य अकालोंमें स्वयं पीड़ित रहते हैं जब कि उनके पास पानी वर्षानेकी एकादशीरूपी कल मौजूद है तो फिर समस्त देशमें दुर्भिक्ष क्यों पड़ते हैं ?

सतयुग में महिष्मतीपुरमें चन्द्रसेन राजा हुआ जो धर्मात्मा था एक दिन नारद आये और कुशल पूछनेके पीछे राजाने आनेका कारण पूछा उन्होंने कहा कि मैं ब्रह्म लोकसे यमलोकको गया तो वहां मैंने तुम्हारे पिताको देखा उन्होंने कहा कि उसको किसी पूर्व जन्म के विघ्न से यमराज के पास आना पड़ा है इस लिये पुत्र से कह देना कि तुम इन्द्रा एकादशी का व्रत कर स्वर्ग पहुँचाओ इस लिये आपके पास आये हैं नारद ने सब विधि बताई उसने वैसा ही किया। जिससे हे युधिष्ठर ! आकाश से फूलों की वर्षा हुई और राजा के पिता गरुड़ पर सवार हो कर स्वर्ग को चले गये। और राजा अकण्टक राज्य करके स्वर्ग को गया ॥

कृते व्रते तु कौन्तेय ! पुष्पवृष्टिरभूद्दिवः ।
तत्पिता गरुडारूढो जगाम हरिमन्दिरम् ॥ ३३ ॥
इन्द्रसेनोपि राजर्षिः कृत्वा राज्यमकण्टकम् ।
राज्ये निवेश्य तनयं जगामत्रिदिवं स्वयम् ॥३४॥

पापकुशा ।

क्वार की शुक्ल पक्ष की एकादशी का पापकुशा कहते हैं यह पापनाशिनी है । इस में पद्मनाभ नाम अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिये इसको पूजे जो स्वर्ग मोक्ष को देने वाली है फिर बहुत काल तीव्र तपस्या कर जो फल मिलता है वह भगवान् के नमस्कार करने से मिलता है मोहयुक्त मनुष्य बहुत पाप करके भी सब पाप नाश करने वाले भगवान् को नमस्कार कर नरक को नहीं जाता। पृथ्वी, तीर्थ, पवित्र स्थान जितने हैं वे विष्णु के नाम से प्राप्त होते हैं उन को यमलोक की यातना भी नहीं होती। मनुष्य घोर पाप करने पर भी एक एकादशी व्रत करने से यम यातना को नहीं प्राप्त होते जैसे पाप नाशने वाला पद्मनाभ व्रत है वैसा तीनों लोकों को पवित्र नहीं है जब ही तक पाप रहते हैं जब

नोट—यह स्पष्ट प्रकट है कि प्राणान्त होने पर यह शरीर मृतवत् पड़ा रहता है और कर्मानुकूल जीवात्मा दूसरा शरीर धारण करता है यथा महात्मा कृष्ण कहते हैं कि (वासांसि जीर्णानि यथा विहाय) परन्तु इस कथा में यह विचित्रता है कि स्वर्ग में उसके पिता को देखा फिर दूसरे यह पिता पुत्र का शारीरिक सम्बन्ध न कि आत्मिक ?

तिक पद्मनाभ का व्रत नहीं करता हजार अश्वमेधयज्ञ, सौ राजसूययज्ञ एक एकादशी के सोलहवीं कलाको नहीं प्राप्त होते इस के बराबर कोई व्रत संसार में नहीं। जो लोग बहाने से भी करते हैं वे यमलोक को नहीं जाते।

अश्वमेध सहस्राणि राजसूयशतानि च।
एकादश्युपवासस्य कलां नार्हन्तिषोडशीम् ॥१३॥
एकादशीसमं किञ्चिद् व्रतं लोके न विद्यते।
व्याजेनापि कृतायैश्च न ते यान्ति हि भास्करिम्॥१४॥

यह एकादशी स्वर्ग, मोक्ष, आरोग्यता, स्त्री, पुत्र, धन, मित्रको देने वाली। गंगा, गया, काशी, पुष्कर, कुरुक्षेत्र भी एकादशी व्रतके पुण्य को प्राप्त नहीं होते ॥ १५। १६ ॥ अध्याय ५८ ॥

स्वर्गमोक्षप्रदह्येषा शरीरारोग्यदायिनी।
कलत्रसुतदा ह्येषा धन मित्रप्रदायिनी ॥१५॥
न गंगा न गया राजन्न च काशी च पुष्करम्।
न चापि कौरवं क्षेत्रं पुण्यं भूपहरेर्दिनात् ॥१६॥

हे राजन्! जो पुरुष रात्रि में जागरण कर एकादशी के दिन व्रत करता है वह मनुष्य वैष्णव पदको पा दश माता दश पिता दश स्त्री की पीढ़ियों को उद्धार कर दुर्गति को नहीं पाता ॥

दशैवमातृके पक्षे राजेंद्र दशपैतृके।
प्रियाया दशपक्षे तु पुरुषानुद्धरेन्नरः ॥ १८ ॥
उपोष्यैकादशीं नूनं नैव प्राप्नोतिदुर्गतिम् ॥ ५० ॥

नोट—क्या यह यजमानों के लुटा करने और वैदिक धर्मसे विमुख करने वाली शिक्षा नहीं है कि जो बहाने से भी करने हैं वे यमराज के यहां नहीं जाते शोक ऐसी शिक्षा पर!

हमको बड़ा आश्चर्य ऐसी कथाओं पर होता है कि एक ओर तो वह महात्मा कृष्णजी का वचन "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्" एक ओर इसमें लिखा है कि माता की दश पीढ़ी एवं पिता की दश पीढ़ी केवल एक एकादशीके व्रतसे तर जाती हैं। पाठक गण क्या न्याय इसीका नाम है?।

रमा ।

कार्तिक कृष्ण पक्षकी एकादशी को रमा कहते हैं पूर्व समय में मचकुन्द नाम राजा विष्णु का भक्त और सत्यवादी था जिस की इन्द्र, कुबेर, यमसे मित्रता थी उसने अपनी लड़की चन्द्रभागा को राजा चन्द्रसेन के पुत्र शोभन के साथ विवाह कर दिया इसी समय में शोभन श्वसुर के घर आया वह दिन एकादशी के व्रत का था राजा के राज्य में उसका बड़ा नियम था नगारा बजते ही इसने चन्द्रभागा से कहा कि अब मैं क्या करूं तब उसने कहा यदि भोजन करो तो घर से निकल जाओ उसने कहा मैं भी व्रत करूंगा जब भूख लगी और रात्रि आई शोभन की सूर्य्योदय में मृत्यु हो गई तब तो राजा ने राजाओं के योग्य काष्ठ से जलवा दिया। चन्द्रभागा ने अपने देह को अपने पति के साथ नहीं जलाया ॥ २० ॥

दाहयामास राजातं राजयोग्यैश्च दारुभिः ।
चंद्रभागानात्मदेहं ददाह पतिना सह ॥ २० ॥

शोभन रमा एकादशी के प्रभाव से मन्दाचल के कंगूरे पर देवलोक में प्राप्त हुआ जहां वह सुन्दर महलों में सिंहासन पर बैठा हुआ अप्सराओं से सेवित था। वहां कोई मुचकुन्द के पुर में बसने वाला सोम शर्मा ब्राह्मण तीर्थ यात्रा करता हुआ राजा के दामाद के पास गया शोभन ने सोम शर्मा को उठ कर प्रणाम किया और श्वशुर आदि की कुशल पूंछी उसने कह कर कहा कि आप इस नगर में कैसे आये शोभन ने कहा कार्तिक के कृष्ण पक्ष में रमा एका-दशी के व्रत के प्रभाव से मैंने अनिश्चय पुर तो प्राप्त किये अब आप यह कीजिये जिस से निश्चय हो जावे ॥ २१ ॥

कार्तिकस्य सिते पक्षे यानामैकादशी रमा ॥ ३१ ॥
तामुपोष्यमयाप्राप्त द्विजेंद्रपुरमध्रुवम् ।
ध्रुवं भवति ये नैव तत्कुरुष्व द्विजोत्तमः ॥ ३२ ॥

तब ब्राह्मण ने कहा हमको यह निश्चय कैसे हो उसने कहा मुचकुन्द की कन्या चन्द्रभागा से कहना वहां निश्चय हो जावेगा यह मुचकुन्द पुर में आया और सब वृत्तान्त चन्द्रभागा से कहा कि हे सुभगे मैंने तुम्हारे पति को

नोट—भगवद्गीता के पाठी इस कथा पर सम्यक्रीत्या विचार करें।

प्रत्यक्ष देखा जो इन्द्र के समान हैं जिनको वह पुर अनिश्चित प्राप्त हुआ है इस लिये तुम मुझको भी ले चलो आपको बहुत पुण्य होगा यह सुन कर वह दोनों वहां गये चन्द्रभागा पति को देख कर बहुत प्रसन्न हुई इसी प्रकार पति स्त्री को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और आनन्द मङ्गलसे आयु व्यतीत करने लगे यह रमा एकादशी का माहात्म्य है ॥

प्रबोधनी ।

कार्तिक शुक्ल पक्ष की एकादशी प्रबोधनी होती है तभी तक तीर्थ समुद्र, तालाब, भागीरथी की गङ्गा पृथ्वी पर गरजती हैं जब तक कार्तिक की शुक्लपक्ष की विष्णु की प्रबोधनी एकादशी नहीं आती ॥ ५, ६ ॥

तावद्गर्जंति तीर्थानि आसमुद्रसरांसि च, यावत्प्रबोधिनी विष्णोस्तिथिर्नायाति कार्तिके ॥ ५ ॥ तावद्गर्जंति विप्रेंद्र गंगा भागीरथी क्षितौ । यावन्नायाति पापघ्नी कार्तिके हरिबोधिनी ॥ ६ ॥

भक्ति पूर्वक इस एकादशी के व्रत करने से हजार अश्वमेध सौ राजसूययज्ञ, तीनों लोकों के दुर्लभ पदार्थ, ऐश्वर्य, बुद्धि, राज्य सुख, त्रिलोकी के सब तीर्थोंका पुण्य-पुत्र-पौत्र-ज्ञान-सोना चांदी के दान के फल के समान फल प्राप्त होते हैं पहिले हजार जन्मों के पाप रुई के समान जल जाते हैं और गर्भ में कभी वास नहीं करना पड़ता ॥ अध्याय ६१ ॥

यः करोति नरो भक्त्या भुक्तिभाक्सभवेन्नरः ।
प्रबोधिनीमुपोष्यित्वा गर्भेनविशते नरः ॥ २५ ॥

हे नारद इस व्रत को करो कर्म, मन, वाणी से जो पाप है ॥ २६ ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य तस्मात्कुर्वीत नारद ।
कर्मणा मनसा वाचा पापं यत्समुपार्जितम् ॥ २६ ॥

उनको प्रबोधनी के जागरण नाश करते हैं स्नान, दान, तप, पूजा को भगवान् का उद्देश्यकर जो प्रबोधनी में करता है वह अक्षय होता है जो भक्तिसे पूजा और व्रत करते हैं सैकड़ों जन्म के पापों से छूट जाते हैं हे पुत्र नारद यह महाव्रत बड़े पापों को नाशने वाला है ॥ २९ ॥

समुपोष्य प्रमुच्यन्ते पापैस्तैः शतजन्मजैः ।
महाव्रतमिदं पुत्र महापापौघनाशनम् ॥ २७ ॥

बाल्य, युवा, वृद्धावस्थामें जो सौ जन्मतक पाप किये हों उनको भगवान् नाशते हैं क्योंकि यह एकादशी धन धान्य देनेवाली और पुण्य करनेवाली और सब पापों को नाशने वाली है ॥

बाल्ये यत्संचितं पापं यौवने वार्द्धिके तथा ।
शतजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु ॥ ३२ ॥
तत्क्षालयति गोविन्दश्चास्यामभ्यर्चितो नृणाम् ।
धनधान्यवहा पुण्या सर्वपापहरा परा ॥ ३३ ॥

जो भक्ति से व्रत करता है उसको कुछ भी कठिन नहीं है चन्द्र, सूर्य्य, ग्रहण में जो पुण्य है उसका हजार गुणा पुण्य प्रबोधनी के जागरण में है स्नान, जप, तप, भोजन, दान, होम, पढ़ना इस प्रबोधनी में करने से करोड़ गुणा देते हैं और जन्म भर में जो पुण्य इकट्ठा किया हो परन्तु कार्तिक में व्रत न किया हो तो सब पुण्य नाश होजाते हैं ॥ ३७ ॥

वृथा भवति तत्सर्वमकृत्वा कार्तिके व्रतम् ॥ ३७ ॥

यज्ञ, दान जपादिको सेवै सो भगवान् प्रसन्न नहीं होते जैसा कार्त्तिक में शास्त्र की कथाओं से होते हैं जो मनुष्य विष्णुकी कथा का आधा या चौथाई श्लोक कहते या सुनते हैं उनको सौ गौका फल होता है इससे सब धर्मों को छोड़कर विष्णु के आगे शास्त्र कहे या सुने जो मनुष्य कल्याण की इच्छा या लोभसे करता है वह सौ पढ़ियों को तार देता है जो नियम से सुनता है उसको सातों द्वीप युक्त पृथ्वी के दान करने का फल मिलता है जो बांचने वाले को दान देता है उसको नाश रहित लोक मिलता है और जो शंखमें जल लेकर अर्घ्य देता है जो सब तीर्थों में सब दानों के करने से जो फल मिलता है तिसका करोड़ गुणा फल प्रबोधनी को अर्घ्य देने से मिलता है । गुरुको भोजन कपड़ा दे केतकी के एक पत्र से भगवान् सहस्र वर्ष तक अगस्त्य के फूलों से पूजन करने वालों को नरक की अग्नि नाश होजाती है मुनिके फूलों से मनोवांछा, तुलसीदल से दश हजार वर्ष के पाप नाश होजाते हैं और जो मनुष्य देखे छुवे ध्यान लगावे नाम स्तुति करे सींचे और पूजन करे तो करोड़ हजार युग उसकी सुकृति बढ़ती है

जिस प्रकार तुलसी के डाले बीज तुलसी पृथवीपर बढ़ती है वे लगाने वाले के वंश में जो उत्पन्न हुये होंगे, होने वाले हैं वे सब हजार वर्ष भगवान् के घर में वास करते हैं।

नोट—क्या राजा दिलीप एवं श्रीरामचन्द्रादिके समय में ऐसे सुगम व्रत न थे जो केवल एक दिनके व्रत और जागरण करने से मुक्ति प्राप्त करलेते। इस के उपरांत इस व्रत के न करने से भगवान् जन्मभर के पुण्योंका नाश करदेते हैं। कहिये यह न्याय है या पक्षपात। यथार्थ में ग्रन्थकर्त्ता ने वा किसी मिलाने वाले पुरुषने प्रबोधिनी की महिमा बढ़ाने के लिये इतना फल दिया और तुलसी और अगस्त्यादिके वृक्षों के स्पर्श और सींचने से करोड़ हजार वर्ष से भी अधिक सुकृति बढ़ती है तो हम सबसे माली अधिक महिमा के योग्य हैं और वही स्वर्ग अधिकारी होंगे। सज्जन जनों कुछ तो विचार कीजिये।

कमला।

मलमासकी कृष्णपक्ष की एकादशी को कमला कहते हैं अन्ति पुरी में शिव शर्म्मा नाम एक ब्राह्मण हुये हैं जिनके ५० पुत्र थे, जिसमें छोटा कुकर्मी था इस लिये सबने छोड़ दिया वह चलता हुआ प्रयाग पहुँचा त्रिवेणी में स्नान किया भूखसे व्याकुल हुआ हरिमित्र मुनिके स्थान पर पहुँचा वहां मलमास की एकादशी कमलाकी कथा होरही थी जहां बहुत मनुष्य सुन रहे थे उसने सुना सबके साथ शून्य स्थान में व्रत भी किया उसके प्रतापसे आधीरात को लक्ष्मी आई और बोली कि मैं तुझको वर दूंगी तब जयशर्म्मा ने कहा कि हे रम्भे! आप इन्द्र की इन्द्राणी महादेवकी पार्वती या गंधर्वी या किन्नरी या चन्द्रमा सूर्य्य की स्त्री आदिकौन हो मैंने आपके समान किसी को नहीं देखा तब लक्ष्मी बोली कि मैं वैकुंठसे आई हूं और कमला के प्रभाव से भगवान् ने भेजा है मैं बहुत प्रसन्न हूं तुमने एकादशीका मुनियों के साथ प्रयाग में व्रत किया है इसलिये तुम्हारे वंश में सब मनुष्य लक्ष्मी से युक्त होंगे यह महीनों में श्रेष्ठ महीना है जैसे पक्षियों में गरुड़, नदियों में गंगा इत्यादि हैं इसमें निराहार रहकर दूसरे दिन प्रातः उठ स्नानकर इन्द्रियों को वशकर विष्णुका पूजन कर भगवान् से प्रार्थना करे फिर आप भोजन करे लक्ष्मी जी यह वर देकर अंतर्धान होगई तब ब्राह्मण धनाढ्य होकर पिता के घर गया। अध्याय ६२॥

इत्युक्त्वा कमला तस्मै वरं दत्त्वा तिरोदधे ॥
सोपि विप्रोधनी भूत्वा पितुर्गेहं समागतः ॥ ४२ ॥

कामदा ।

मलमास के शुक्ल पक्ष की एकादशी को कामदा कहते हैं कलियुग में एकादशी संसार के बंधन को छुड़ाने वाली है ॥ ४ ॥ अध्याय ६३ ॥

इतवार, मङ्गल, संक्रान्ति में सदा एकादशी व्रत करने योग्य है क्योंकि पुत्र, पौत्र को बढ़ाने वाली है ॥ ५ ॥ इस का व्रत विष्णु के प्यारे भक्त को कभी त्यागने योग्य नहीं है क्योंकि यह नित्य ही आयु, यश, पुत्र, आरोग्य, द्रव्य, मोक्ष राज्य को देती है । हे राजन् ! जो नित्य श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त एकादशी व्रत को करते हैं वे मनुष्य जीवन मुक्त और विष्णु रूप, निस्संदेह दिखलाई देते हैं ॥ ६ । ७ । ८ ॥

एकादशी व्रतं क्वापि न त्याज्यंविष्णु वल्लभैः ।
आयुः कीर्तिप्रदं नित्यं संतानारोग्य वित्तदम् ॥ ६ ॥
मोक्षदं रूपदं राज्यं नित्यमेकादशी व्रतम् ।
ये कुर्वंति महीपाल श्रद्धया परमायुतः ॥ ७ ॥
यथोक्तविधिना लोके ते नराः विष्णुरूपिणः ।
जीवन्मुक्तास्तु भूपाल दृश्यंते नात्र संशयः ॥ ८ ॥

सब मनुष्यों को सब कामनाओं को देने वाली है क्योंकि एकादशी पवित्र पावन है व्रत रखने वाला दसवीं के दिन कांस, मांस, मसूर, चना, कौदों, साग, मधु, पराया अन्न दूसरी बार भोजन, मैथुन यह वस्तुयें छोड़ देवै, जुआ खेलना, क्रीड़ा, नींद, पान, दतून, पराया कलंक, चुगुली, चोरी, जीवमारना, मैथुन, क्रोध, झूठ वचन यह सब एकादशी में त्याग देवे । कांसा, मांस, मसूर,

---

नोट—कहिये पापियों को अब कौन भय रहा जो वह पापसे डरें चाहे जितनी चोरी, रिश्वत जारी इत्यादि नीच से नीच कर्म कर केवल एक दिन जाकर स्वयं या बेवशी से व्रत करले सारे पाप छूटकर लक्ष्मीजी तक प्राप्त होगी परन्तु न जाने आज कल लक्ष्मी जी सोगई हैं या विष्णु की आज्ञाकारिणी नहीं रहीं जो आज कल प्रायः एकादशी के व्रती बहुत कम धनवान् दिखाई देते हैं ।

तेल, झूंठ बोलना, कसरत, परदेश जाना, दूसरी बार भोजन, मैथुन, बैल की पीठ, पराया अन्न, मार्ग यह द्वादशी को छोड़ देवे ! हे राजन् ! इस विधि से जो कामदा के वृत को करते हैं वे परम गति को प्राप्त होते हैं ।

एकादशी जागरण माहात्म्य ।

जो मनुष्य आनन्द समेत निद्रा रहित जागरण करता है उसके सब पाप छूट जाते हैं जो जागरण में भगवान् के आगे नाचता नहीं वह सात जन्म लंगड़ा होता है ।

यो न नृत्यति मूढात्मा पुरतो जागरेहरेः ।
पंगुत्वं तस्य जानीयात् सप्तजन्मानि बाडव ॥ ४० ॥

जो नाच गा कर जागरण करता है वह ब्रह्मा और विष्णु के पद को पाता है जिन मनुष्यों ने करोड़ जन्म पाप किये वे जागरण के कारण रात्रि में नाश हो जाते हैं । काम, अर्थ, सम्पदा, पुत्र, यश आदि द्वादशी के जागरण के बिना दश हजार यज्ञों से भी नहीं मिलते । चलते हुए मनुष्य के पैरों से जो धूलि के कण गिरते हैं उतने ही हजार वर्ष, जागरण करने वाला स्वर्ग में बसता है । ब्रह्महत्या के बराबर पाप जागरण से नाश हो जाते हैं । अध्याय ३७ ॥

यत्किंचित्कि यतेपापं कोटिजन्मनि मानवैः ।
श्रीकृष्ण जागरे सर्वं रात्रौ नश्यति बाडव ॥
कामार्थोसंपदः पुत्राः कीर्तिलोकाश्चशाश्वता ।
यज्ञायुतैर्नलभ्यन्ते द्वादशी जगरं विना ॥ ४७ ॥
यावत्पदानि चलति केशवा यतनं प्रति ।
अश्वमेधसमानि स्युः जागरार्थं प्रगच्छतः ॥ ४६ ॥
पादयोः पतितं यावद्धरण्यां पांशुगच्छताम् ।
तावद्वर्षसहस्राणि जागरो वसते दिवि ॥ ५० ॥
यानिकानि च पापानि ब्रह्महत्या समानि च ।
कृष्णाह जागरात्तानि विलयं यांति खंडशः ॥ ७१ ॥

एक ओर श्रेष्ठ दक्षिणाओं से समाप्त हुये सब यज्ञ और एक ओर भगवान् का प्यारा उन्हींका जागरण, काशी, पुष्कर, प्रयाग, नैमिषारण्य, गया, शालिग्राम का महाक्षेत्र, अर्बुदारण्य पुष्कर, मथुरा सब तीर्थ, यज्ञ, चारों वेद, यह सब भगवान् के जागरणमें प्राप्त होते हैं।

गंगा, सरस्वती, तापी, यमुना, शतद्रुकी, चन्द्रभागा, विशासता यह सब नदियां भी जागरण में पहुँचती हैं। तालाब कुंड सब समुद्र भी एकादशी में कृष्ण के जागरण में नाचते गीत गाते वीणा बजाते हुये प्रसन्न करते हैं उनकी देवता लोग वांछा करते हैं।

विष्णु के बराबर कोई देवता नहीं द्वादशीके बराबर कोई तिथि नहीं इसके व्रत करने से अक्षय फल होता है।

अब कुछ अन्य व्रत माहात्म्य भी सुन लीजिये।

———:o:———

त्रिस्पृशाव्रत।

नारदजी ने महादेवजी से कहा कि आप त्रिस्पृशा नाम व्रतको कहिये। जिस के सुनने से मनुष्य कर्म बंधन से क्षणमात्र में छूट जाता है, यह सुन महादेवजी ने कहा कि सब पापों के समूह महादुःखों के नाश करने वाला त्रिस्पृशा नाम व्रत सुनो। शास्त्र, पुराणादिक, यज्ञ कोटियों तीर्थ, अनेक व्रतों के समय और देवताओं के पूजन से मोक्ष नहीं होता। इस लिये देव देवने यह वैष्णवी तिथी मोक्ष ही के लिये दिखलाई है। पद्म अध्याय ३४॥

मोक्षार्थे देवदेवन दृष्टा वै वैष्णवीतिथि॥ ७॥

कलियुग में ब्राह्मण सांख्य को कठिनता से जानते और इन्द्रियों का वश में करना और मनको जीतना महाकठिन है। इसलिये कामी ध्यानकी धारणा से वर्जित मनुष्य त्रिस्पृशा के व्रत करने से ही मोक्षको पाते हैं।

कामभोगप्रसक्तानां त्रिस्पृशा मोक्षदायिनी॥ १२॥

नोट—इससे प्रथम तो यह कहा था कि एकादशी के समान कोई व्रत नहीं। अब यह कहा कि द्वादशी के समान कोई तिथि नहीं इसमें भगवान् के पूजन की विधि में नाचने से साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु का पद प्राप्त होता है और यदि न नाचे तो सात जन्म लंगड़ा होता है क्या इससे बढ़कर और भी कोई अचम्भे की बात है?

कार्तिक के शुक्ल पक्ष में सोमवार या बुधवार के दिन त्रिस्पृशा हो तो करोड़ पापों को नाश करने वाली होती है। इस व्रत के करने से हत्यायुक्त महादेव के हाथ से कपाल गिर गया, कलियुग के करोड़ों पाप समूहों से गङ्गा देवी छूट गई बाहुवीर्य की आठ हत्या, शतायुध की ब्राह्मण मारे की हत्या, इन्द्र की नमुचि से उत्पन्न हत्या इस व्रत से जाती रही।

हस्ताद्ब्रह्मकपालं तु रुद्रस्यापतितं भुवि ॥ १४ ॥
कलिकल्मषकोट्योघैर्मुक्ता देवी त्रिमार्गगा ॥ १५ ॥
हत्याष्टौ बाहुवीर्यस्य पूर्वजाता महामुने ।
गता भृगूपदेशेन त्रिस्पृशासमुपोषणात् ॥ १६ ॥

जो जन इस व्रत को नहीं करते वह प्रयाग, काशी, गोमती, कृष्णाजी के समीप में मरने से भी मोक्ष को नहीं पाते क्योंकि इन में स्नान करने से शाश्वती मुक्ति होती है और त्रिस्पृशा व्रत के करने से कामभोग से युक्त भी मनुष्य घर ही में मुक्ति पाता है।

न प्रयागे न काश्यां तु गोमत्यां कृष्णसन्निधौ ।
मोक्षो भवति विप्रेन्द्र त्रिस्पृशा यद्दिनो कृता ॥ २० ॥
गृहेपि जायते मुक्तिस्त्रिस्पृशां मोक्षदायिनीम् ॥ २१ ॥

यह सुन नारदजी के फिर पूछने पर महादेवजी ने कहा कि प्राची सरस्वती के तट गङ्गा ने श्रीकृष्ण महाराज से कहा कि कलियुग में करोड़ों ब्रह्महत्यादिक पापों से युक्त मनुष्य हमारे जल में स्नान करते हैं उन के सैकड़ों पाप दोषों से हमारी देह कलुषीकृत है वह पाप किस प्रकार से जायँ।

तब श्रीकृष्णजी ने कहा कि तुम रोदन न करो हमारे सम्मुख प्राची देवी है और सरस्वतीजी बह रही हैं। इसमें नित्य स्नान करने से पवित्र हो जाओगी, क्योंकि मैं यहां निस्सन्देह सैकड़ों तीर्थों और देवताओं से युक्त बसता हूं यह स्थान मेरे प्रिय पवित्र और करोड़ हत्या का नाश करने वाला है इसको मैं तुम को देता हूं क्योंकि तुम मेरे प्राणों से अधिक प्यारी हो।

१. ब्राह्मण को मारना, मदिरा पीना, गौ और शूद्र की स्त्री का वध करना, ब्राह्मण का द्रव्य छीन लेना, माता पिता का सत्कार न करना, कुम्हार के चाक को छूना। गुरुजी से वैर करना। अभक्ष भोजन करना इन सब पापों

के करने से प्राची सरस्वती में हमारे आगे एक बार तुम स्नान करो पाप से हीन हो जाओगे ।

अक्रियानाद्गुरुद्रोहादभक्ष्यस्य च भक्षणात् ।
सर्वपापस्य करणात् प्राचीब्रह्म सुतासुतो ॥ २४ ॥
व्यपोहयति पापानि सकृत्स्नानेन मेग्रतः ।
कुरुस्नानं सरिच्छ्रेष्ठे विपापात्वं भविष्यसि ॥ २५ ॥

यह सुन गङ्गा ने कहा कि मैं नित्य आने में असमर्थ हूं अब मेरे पाप कैसे नाश होंगे इसको आप कहिये । अच्छा तो मैं और उपाय कहता हूं । क्योंकि तुम मेरे चरण से उत्पन्न हो सरस्वती से अधिक सौ करोड़ तीर्थों से अधिक करोड़ यज्ञ, व्रत, दान, जप, होम से अधिक धर्म, अर्थ काम, मोक्ष फल की देने वाली सांख्ययोगसे भी अधिक फलदायक त्रिस्पृशाको करो ।२८॥

सरस्वत्यधिकाया च तीर्थकोटिशताधिका ।
मखकोट्यधिकावापि व्रतदानाधिकाचया ॥ २८ ॥
जपहोमाधिकायाच चतुर्वर्गफलप्रदा ।
सांख्ययोगाधिकायाच त्रिस्पृशा क्रिदतां शुभा ॥ २९

तब कृष्ण महाराज ने कहा कि एकादशी द्वादशी वेधी हो और कुछ रात्रि रहे जो त्रयोदशी भी हो जावे वह त्रिस्पृशा जानने योग्य है और दशमी युक्त एकादशी को करने से करोड़ जन्म का किया हुआ पुण्य और पुत्र नाश हो जाते हैं और अपने पुरुषों को स्वर्ग से नरक रौरव आदि में डाल देता है । ऐसे अपराध को मैं नहीं क्षमा करता हूं । तब गङ्गाजी बोलीं कि हे जगन्नाथ ! आप के वचन से त्रिस्पृशा को मैं करूंगी और आप ही की आज्ञा से सब पापों से छूट जाऊंगी । क्योंकि करोड़ों तीर्थ करने से जो फल मिलता है वह एक त्रिस्पृशा के व्रत से मिलता है ।

करिष्येहं जगन्नाथ ! त्रिस्पृशां वचनातव ।
सर्वपापविनिर्मुक्ता भविष्यामि तवाज्ञया ॥ ५५ ॥
तीर्थकोटिषु यत्पुण्यं क्षेत्रकोटिषुयत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोति त्रिस्पृशा समुपोषणात् ॥ ८१ ॥

जो मनुष्य भक्ति से इसको करता है उस को हजार मन्वन्तर काशी जी में गंगा के स्नान करने से जो फल होता है वह इस त्रिस्पृशा के करने वाले को होता है। करोड़ वर्ष प्राची सरस्वती और यमुना के स्नान से जो फल मिलता है वह इस व्रत के करने वाले को मिलता है कुरुक्षेत्र में करोड़ सूर्य-ग्रहण में स्नान सोने के सौ भार दान करने से जो फल है वह त्रिस्पृशा के करने से भी है। करोड़ हजार पाप, करोड़ सैकड़ा हत्या एक ही व्रत से नष्ट हो जाती हैं यह त्रिस्पृशा का व्रत नहीं गति होने वालों को गति देने वाला है। जिन्होंने सैकड़ों भारी पाप किये हैं वह भी गति की इच्छा नहीं करते हैं। कलियुग में त्रिस्पृशा को प्राप्त होकर जो अधम मनुष्य नहीं करते हैं उनके जन्म का फल और जीना निष्फल है॥ ८६, ८७, ८८, ८०, ८४॥

पापकोटिसहस्राणि हत्याकोटिशतानि च॥
एकेनैवोपवासेन क्रियते भस्मसाद्द्रुतम्।
त्रिस्पृशाया व्रतं यत्तु अगतीनां गतिप्रदम्॥
गतिमिच्छंति विप्रर्षे महत्पापशतानि च।
स्वयंकृष्णेन कथितं पाराशरयस्य चाग्रतः॥
कलौ ये त्रिस्पृशां लब्ध्वा न कुर्वंति नराधमाः।
तेषां जन्मफलं चैव जीवितं विफलं भवेत्॥

उन्मीलिनी व्रत।

महादेव ने नारद से कहा कि जब दिन रात एकादशी हो और सवेरे एक घड़ी हो (द्वादशी भेदी) वह उन्मीलिनी व्रत जानना चाहिये यह विशेष कर

नोट—पण्डित जन ही हमारे इस विचार से सहमत हो सकेंगे क्योंकि दुराग्रहियों से तो कुछ आशा नहीं।

१—आपका यह अटल सिद्धान्त है कि "नहिपङ्केन पङ्काम्भः" अर्थात् कीचड़ से कीचड़ नहीं धुलती तब यह किस प्रकार हो सकता है कि जो गङ्गा स्वयं अपने पाप छुड़ाने का यत्न ढूंढ़ती फिरे वह दूसरों को निष्पाप करे।

२—यह कि जल जड़ है न कि चैतन्य और प्रवाहशालिनी होने से इसका नाम गंगा है तब किस प्रकार जल ने ऐसी बातें की जो कि सर्वथा असम्भव हैं।

भगवान् को प्रिय है, तीनों लोकों में जो तीर्थ पवित्र स्थान, यज्ञ, वेद, तपस्या हैं वे उन्मीलिनी के करोड़वें भाग के बराबर नहीं ॥ अध्याय ३५ ॥

त्रैलोक्यस्थानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च
कोट्यंशे नैव तुल्यानि मखा वेदास्तपांसि च ॥ ३४ ॥

इसके समान कोई न हुआ है न होगा प्रयाग, कुरुक्षेत्र, काशी, पुष्कर हिमाचल पर्वत मेरु, गंधमादन, नील, निषध, विन्ध्याचल पर्वत, नैमिषारण्य, गोदावरी, कावेरी, चन्द्रभागा, वेदिका, तापी, पयोष्णी, क्षिप्रा, चंदना, चर्मण्वती, सरयू, गण्डक, गोमती, विपाशा, महानदी, शोण यह सब उन्मीलिनी के बराबर नहीं हैं मैं कहां तक कहूँ इसके समान कोई नहीं जैसे भगवान् के समान कोई देवता नहीं ॥

उन्मीलनीसमं किंचित् न भूतं न भविष्यति ।
प्रयागेन कुरुक्षेत्रं न काशी न च पुष्करः ॥ ३५ ॥
गोदावरी न कावेरी चन्द्रभागा न वेदिका ।
न तापी न पयोष्णी च न क्षिप्रा नैव चंदना ॥३७॥
चर्मण्वती च सरयूश्चन्द्रभागा न गंडिका ।

३-पाप पुण्य अच्छे और बुरे कर्मों का फल हैं और इनकी निवृत्ति भोग से ही हो सकी है परन्तु पुस्तकनिर्माता ने अपने विचार में पाप पुण्य को द्रव्य मान दर्शन शास्त्रों के विरुद्ध न जाने किस प्रकार यह असम्भव लेख लिख दिया कि गङ्गा कहती है जो पापी मुझ में आकर स्नान करते हैं उन से मैं भी दूषित हूं यदि यह बात सत्य है तब तो इस प्रकार आप के सब उपास्य देव दूषित हो गये ।

४-जब गङ्गा को पापनिवारणार्थ त्रिस्पृशा व्रत बताया तो हमारे सनातनी भाइयों को चाहिये कि आजसे गङ्गा स्नान छोड़ त्रिस्पृशा का ही व्रत करें क्योंकि बिचारी गङ्गा को पापिनी बना उसको दुःख देते हैं परन्तु जब त्रिस्पृशा में बहुत से पाप इकट्ठे होगये तो न जाने वह विचारी किसका व्रत ढूंढती और करती फिरेगी इससे भी बढ़कर विष्णु महाराज का गङ्गा के लिये असम्भव और बालबुद्धिसी यह उपाय कि हे गङ्गे तू सरस्वती में स्नान कर जिस से तू अवश्य पवित्र हो जावेगी बुद्धिमान् सज्जन जन ध्यान पूर्वक विचारें ॥

गोमती च विपाशा च शोणश्चैव महानदः ॥ ३८ ॥
किमत्र बहुनोक्तेन भूयो २ नराधिप ।
उन्मीलनी समं किंचिन्न देवः केशवात्परः ॥

इस व्रत के करने से पाप समूह का क्षणमात्र में नाश हो जाता है जिस मास में उन्मीलिनी व्रत तिथि हो उसी महीने के नाम से गोविन्द जी की यत्न पूर्वक पूजा करे और मास के नाम से भगवान् की सोने की मूर्ति बनावे और पवित्र जल, पंचरत्न, चंदन फूल अक्षत और मालाओं से युक्त कलश को स्थापन करे और चन्दन, जल, गेहूं, बर्तन अनेक रत्नों से संयुक्त मल्लिका और मेली के फूलों से पूजन करे । दो कपड़े, अनेक दुपट्टा, जूता इत्यादि सब निवेदन करे और सोने से सींग मढ़ी चांदी के खुर तांबे से पीठ कांसे की दोहनी रत्न की पूंछ वाला बछड़ा और गहनों से युक्त गऊ गुरुजी को देवे धूप दीप नैवेद्य फल इत्यादि को मन्त्रों सहित देवे । फिर विष्णु भगवान् के चरण गुह्यपति, गुह्यइन्द्रिय इत्यादि सर्व मूर्ति का अङ्ग पूजन करे और फिर विधि पूर्वक अर्घ देवे और कहे कि हे सुब्रह्मण्य ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है मुझको शोक है मोह, महापाप सागर से उद्धार कीजिये और हमारे पुरुष कुयोनि में प्राप्त वा पाप से मृत्यु के वश में प्राप्त हैं उन को प्रेत लोक से उद्धार कीजिये मैं आपके आधीन हूं मेरी भक्ति अचल हो और फिर आर्ती करे, कपड़े गोदान गुरु जी को दे और दिन कर्म करके ब्राह्मणों के साथ भोजन करे इस विधि से जो इस व्रत को करता है वह करोड़ हजार कल्प श्री विष्णु जी के समीप बसता है ॥

अनेन विधिनायस्तु कुर्यादुन्मीलनी व्रतम् ।
कल्पकोटिसहस्राणि वसते विष्णुसन्निधौ ॥ ५८ ॥

जयन्ती व्रत ।

पद्मपुराण चतुर्थ ब्रह्मखण्ड अध्याय ४ में लिखा है कि जयन्ती व्रत से जो विमुख रहता है वह सब धर्मों से छूट कर निश्चय नरकको जाता है ॥ ३८ ॥

जयंत्यामुपवासेन योनरात्रपराङ्मुखः ।
सर्वधर्मविनिर्मुक्तो यात्यसौ नरकं ध्रुवम् ॥ ३८ ॥

और जो व्रत करता है उसके घरमें भाग्यहीनता, विधवापन, लड़ाई और सन्तान का विरोध और धनका नाश नहीं होता ॥ ४१ ॥

नदौर्भाग्यं न वैधव्यं न भवेत्कलहोगृहे ।
सततेर्न विरोधं च न पश्यति धनक्षयम् ॥ ४१ ॥

जितने तीर्थ व्रत और नियम हैं वे जयन्ती के व्रतकी सोलहवीं कलाको भी नहीं पाते ॥ ४४ ॥

यानि कानि च तीर्थानि व्रतानि नियमानि च ।
जयन्ती वासरस्यैव कलां नार्हति षोडशीम् ॥ ४४ ॥

भगवान्‌की प्यारी जयन्ती आचारहीनता कुल भ्रष्टता यश हीनता और बुरी योनिमें उत्पन्न हुए पापको शीघ्र ही नाश कर देती है ॥ ४७ ॥

आचारहीनं कुलभ्रष्टं कीर्तिहीनं कुयोनिजम ॥
नाशयत्याशु पापं च जयंती हरिवल्लभा ॥ ४६ ॥

जयन्ती में व्रत करने वाला मेरुपर्वत के बराबर ब्रह्महत्यादिक सब पापोंको जला देता है ॥ ४८ ॥

मेरुतुल्यानि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।
सनिर्दहति सर्वाणि जयन्त्यां समुपोषकः ॥ ४८ ॥

जयन्ती में व्रत करने द्वारा, पुत्रकी इच्छावाला, पुत्रको,धनको कामना वाला, धन और मोक्षवाला मोक्षको पाता है ॥ ४९ ॥

पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ।
मोक्षार्थी लभते मोक्ष जयन्त्यां समुपोषकः ॥ ४६ ॥

जयन्ती के स्मरण और कीर्तन करने से सात जन्मके इकट्ठे किये पापों को जला देती है फिर व्रत करने वालोंके पुण्यका क्या कहना है ॥ ५० ॥

नोट—प्यारे भाइयो विचारो और सोचो तो सही कि अब भी आपको कुछ इसमें संदेह रहा कि पुराणोंमें एकको दूसरा छोटा बना रहा है यथा तीनों लोकमें जो तीर्थ, पवित्र स्थान यज्ञ, वेद हैं वह उन्मीलिनी के करोड़वें भाग के बराबर नहीं कि जिसके करनेसे करोड़ हजार कल्प श्रीविष्णुजी के समीप बस सारे पापों से छूट जाता है।

स्मरणात्कीर्त्तनात्पापं सप्तजन्मार्जितं मुने ।
जयन्ती दहते तस्य किं पुनः सोपवासंकृत ॥ ५० ॥

भादोंमें जन्माष्टमी, चैत्रमें शुक्लपक्षमें शुभकारिणी नवमी, फाल्गुनमें कृष्णपक्ष की चतुर्दशी, वैशाखमें शुक्लपक्ष चतुर्दशी कुवार में दुर्गाष्टमी और शुक्लपक्ष की श्रवणयुक्त द्वादशी यह ६ महापुण्यकारिणी शुभ देनेवाली जयन्ती कहाती हैं।

जयन्ती व्रत करने वाला दिन २ में हजार गौओंके देने के फलको प्राप्त होता है जो कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण में हजार भार सोना देने, हजार करोड़ कन्याओं के दान, समुद्र पर्य्यन्त इस पृथ्वी के देने से और जो माता, पिता और गुरुओं की भक्ति और तीर्थसेवा और सत्यव्रत वालों को और गङ्गा, यमुना और सरस्वती के जलस्नान करने से जो पुण्य है। जिसको सहस्रबाहु, कर्ण, बुद्धिमान् कुमार, सगर, दिलीप, रामचन्द्र, गौतम, गार्ग्य, पराशर वाल्मीकि और साम्ब द्रौपदी के पुत्रने पूर्व समय में किया था।

कर्त्ता गवां सहस्रं तु यो ददाति दिने दिने ।
तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ॥ ६ ॥
हेमभारसहस्रं तु कुरुक्षेत्रे रविग्रहे ।
तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ॥ १० ॥
कन्याकोटि सहस्राणां दाने भवति यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ॥ ११ ॥
ससागरमिमां पृथ्वी दत्वा यल्लभते फलम् ॥
तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ॥ १२ ॥
मातापित्रोर्गुरुणां च भक्तिं युक्तः करोति यः ।
तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ॥ १३ ॥
अपदाहरणार्थाय तीर्थसेवा कृतात्मनाम् ।
सत्यव्रतानां यत्पुण्यं सारस्वते जले ॥
स्नात्वा पुण्यमवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ॥ १४ ॥

जन्माष्टमी ।

पद्मपुराण चतुर्थ ब्रह्मखण्ड अध्याय १३ में लिखा है जो मनुष्य भक्ति से कृष्णा जन्माष्टमी के व्रतको करता है वह करोड़ कुलसे युक्त होकर अन्त में विष्णु जी के पुर को प्राप्त होता है। बुधवार या सोमवार में रोहिणी नक्षत्र युक्त अष्टमी करोड़ कुलों को मुक्त करदेती है। महापापी भी पाप से छूटकर हरिके स्थानको जाता है। जो अधम इस व्रत को नहीं करता वह इस लोक में दुःखी रह मर कर नरकमें जाता है और जो मूर्खा स्त्री प्रति वर्ष इस व्रत को नहीं करतीं वह भयंकर नरक में जाती हैं यह बात सत्य माननी चाहिये कि जो मूढ़ पुरुष इस व्रत के दिन भोजन करता है वह महा नरकोंमें जाता है॥

कृष्णजन्माष्टमी ब्रह्मन्भक्त्या करोति यो नरः ।
अंते विष्णुपुरं याति कुलकोटियुतो द्विज ॥ २ ॥
अष्टमी बुधवारे च सोमे चैव द्विजोत्तम ।
रोहिणी ऋक्षसंयुक्ता कुलकोटिविमुक्तिदा ॥ ३ ॥
महापातकसंयुक्तो करोति व्रतमुत्तमम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तश्चांते याति हरेर्गृहम् ॥ ४ ॥
कृष्णा जन्माष्टमी ब्रह्मन्नकरोति नराधमः ।
इहदुःखमवाप्नोति स प्रेत्य नरकं व्रजेत् ॥ ५ ॥
न करोति च या नारी कृष्णाजन्माष्टमी व्रतम् ।
वर्षे वर्षे तु सा मूढा नरकं याति दारुणम् ॥ ६ ॥
जन्माष्टमी दिने यो वै नरोऽश्नाति विमूढधीः ।
महानरकमश्नाति सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ ७ ॥

पूर्व समय में दिलीप राजा ने श्रीमान् वशिष्ठजी से सर्व पाप नाशक व्रत को पूछा था। तब उन्होंने कहा कि एक समय में पृथ्वी कंसादिक राजाओं से पीड़ित होकर महादेवजी के पास रोती हुई गई जिस को देख महादेव देवतों के साथ ब्रह्मा के समीप गये और वहां जाकर कंस के मारने के कारण को कहते हुए। तब ब्रह्मा समेत सब विष्णुजी के पास गये और सबने स्तुति की। तब

विष्णुजी ने कारण पूछा तब ब्रह्माजी ने कहा कि महादेवजी के वर से कंस से पृथ्वी पीड़ित होकर दुःखी हो रही है और महादेवजी से कंस ने यह वर माँग लिया है कि भानजे के बिना मेरी मृत्यु न हो इस लिये आप गोकुल जाकर कंसके मारने के लिये देवकी के पेट में जन्म लीजिये तब विष्णु ने महादेवजी से कहा कि पार्वती को दीजिये यह एक साल रह कर चली आवेगी तब महादेवजी और पार्वतीजी ने मथुरा की यात्रा की और भगवान् ने देवकी, पार्वतीजी ने यशोदा के पेट में नव मास नव दिन रह कर भादों की कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि रोहिणी नक्षत्र युक्त वासुदेवजी के आप पुत्र और नन्दजी की स्त्री बैराटी यशोदा स्त्री कन्या को उत्पन्न करती हुई उस समय वसुदेव को आनन्द हुआ तब देवकी ने कहा कि आप यशोदाजी के समीप जाकर पुत्र को देकर कन्या ले आओ उन्होंने ऐसाही किया फिर कंस को खबर मिली कि देवकीजी के कुछ उत्पन्न हुआ है दूत आये और छल से कन्या को कंस को देते हुए तब उस ने राक्षसों से कहा कि इसको शिला पर पटक दो उन्होंने ऐसा ही किया तब वह गौरी रूप कन्या ने महादेव के समान चल कर कहा कि कंस का मारने वाला नन्द के यहां छिपा हुआ है तब कंस ने पूतना से कहा कि तुम नन्द के यहां जाओ और कपट से पुत्रको मार कर चली आओ वह गई दूध पर विष लगा कर पिला आपही यमपुर को चली गई। श्रीकृष्णजी शकटासुर, तृणावर्त आदि को मार काली को दमन कर मथुरा को चले गये वहां जाकर कंसादि को मारा। यह कृष्ण के जन्म के दिन का व्रत कहा इसके सुनने से पाप नाश हो जाते हैं। जो स्त्री पुरुष इस व्रत को करता है वह यथेष्ट अतुल फल को पाता है।

प्रथम महाराजा चित्रसेन नामहुये जो महापाप परायण महान् अगम्या गमन कर ब्राह्मण के सोने को चुराने वाला मदिरा से सदैव तृप्त और वृथा मांस में रत इस प्रकार पाप में युक्त होकर नित्य ही प्राणियों के मारने में रत होकर चांडाल और पतितों के साथ सदैव वार्तालाप करते थे। वह शिकार को गये और व्याघ्र को देख कर फौज से कहा कि मैं ही इसको मारूंगा राजा पीछे पड़ा वह भागा राजा भूख प्यास से व्याकुल यमुना के किनारे जाता हुआ उस दिन कृष्ण की जन्माष्टमी रोहिणीयुक्त थी।

क्षुत्पिपासाकुल क्लेशः संध्यायां यमुनातटे ॥
अष्टमीरोहणीयुक्ता तद्दिनं जन्मवासरम् ॥

प्रातः यमुना जी में कन्यायें व्रत करती भई अनेक प्रकारकी भेंट द्रव्य आदि से पूजन करती हुई बहुत गुण वाले अन्तको देखकर राजा का मन भोजन करने को हुआ और स्त्रियों से कहा अन्नके बिना मेरे प्राण निकले जाते हैं तब स्त्रियां बोलीं कि हे पाप रहित राजा जन्माष्टमी में आपको भोजन न करने चाहियें जो कृष्णजी के जन्म में अन्नका भोजन करता है वह गीध्र, गधा, कौवा और गऊ के मांस को निस्संदेह भोजन करता है ॥ ७६ ॥

जन्माष्टम्यां हरेराजन्नभोक्तव्यं त्वया न च ॥
गृध्रमांसं खरं काकं गोमांसमन्नमेव च ॥ ७६ ॥

संसार में उत्पन्न होनेवालों के अनेक छिद्र होते हैं जिन्हों ने जयन्ती का व्रत नहीं किया उनको यमराज के यहां दण्ड मिलता है और उसके दिये हुएको पितर ग्रहण नहीं करते जयन्ती में भोजन करने से सब पितर गिरा दिये जाते हैं यह सुन राजा ने व्रत किया कुछ फूल चन्दन कपड़ा लेकर प्रसन्न होकर इस व्रत में युक्त होता भया और तिथि और नक्षत्र के अन्तमें पारायण करता तो चित्रसेन राजा इस व्रतके प्रभाव से पितरों समेत सुन्दर विमानपर चढ़कर भगवान् के स्थान को जाता भया जो फल मथुराजी में जाकर कृष्ण जी के मुखरूपी कमल के दर्शन करने से मिलता है वह फल कृष्णजी की जन्माष्टमी के व्रत से पुरुषको प्राप्त होता है और द्वारका जाकर संसार के ईश्वर भगवान्के दर्शन करने से जो फल मिलता है वह फल दोनों को कृष्ण जन्माष्टमी व्रत करने से मिलता है।

यत्फलं द्वारकां गत्वा दृष्टे विश्वेश्वरे हरौ ।
तत्फलं प्राप्यते दीनैः कृत्वा जन्माष्टमी व्रतम् ॥ ८५ ॥

शिवरात्रि व्रत ।

(शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ७२)

विष्णुजी महाराजने शिवजी से पूंछा कि आप कौनसे व्रतसे संतुष्ट होते हैं तब शिवजीने कहा कि सबसे श्रेष्ठ शिवरात्रि व्रत है जिस का फल दशसहस्र वर्षमें भी पूर्ण नहीं कह सकते हां जो अनादर से भी करता है उनकोभी निस्संदेह मुक्ति प्राप्त होती है ॥

फलं वक्तु न शक्येत वर्षाणामयुतैरपि ॥ १०८ ॥

अनादरतया वेदै कृतं व्रतमनुत्तमम् ।
तस्यैव मुक्तिबीजं च जातं नात्र विचारणा ॥ १०६ ॥

———:#:———

इतिहास ।

अध्याय ७५ में लिखा है कि उज्जैन नगरी में वेदका जानने वाला एक ब्राह्मण जिसकी पतिव्रता स्त्री थी । जिसके दो पुत्र थे । एक धर्मात्मा और दूसरा दुर्व्यसन में लगा हुआ था । पिताको एक अंगूठी राजाके यहां से मिली जिसको उस ने स्त्री को देदी उसने घरमें रखदी दुष्टात्मा पुत्र उसको चुराकर लेगया जो वेश्या को जाकर दे आया जिस को धारणकर वह राजसभा में नाचने को गई राजा ने अपनी अंगूठी देखकर सब वृत्तान्त जान पण्डितजी से कहा उन्होंने घर जाकर कहा लाचार होकर वेदनिधिको घरसे निकाल दिया, उसने इधर उधर बहुत दिन व्यतीत किये एक दिन उसको शामतक भोजन नहीं मिला उस दिन लोकपालनी शिवरात्रि थी कोई अनेक प्रकार की सामग्री लिये शीघ्रता के साथ शिव मन्दिर में जा रहा था वेदनिधि उसको देख भोजनों की इच्छा से उसके पीछे २ गया तहां मन्दिर में और लोग भी पूजा कर रहे थे वह भोजनों की इच्छा से रात्रि में जागरण करता रहा । इधर उन सबने पूजा कर नृत्य आदि से निवृत्त हो सो रहे । वेदनिधि उनको सोता देख भोजनों की इच्छा से धीरे २ शिवजी के निकट आया जहां दीपकों का प्रकाश मन्द २ हो रहा था जिससे वह अन्नादि अच्छे प्रकार दृष्टि नहीं आता था इस लिये उसने अपनी पगड़ी फाड़ कर बत्ती बना अन्न के लिये बत्ती को प्रज्वलित किया इस से अन्धकार दूर हो गया तब अन्न को गृहण कर वह हौले २ वहां से चला तो सोते हुये पुरुषों के पैरों पर पैर पड़ गया जिस से वह जाग गये और कहने लगे यह कौन चोर है तब मारे डर के वह भागा राजा के सेवक चौकीदार उसके पीछे दौड़े वह दौड़ा तब उन्होंने बाण छोड़े जिससे वह गिर पड़ा और मृतक हो गया परन्तु अज्ञान से उसको व्रत और रात्रि में जागरण भी होगया ॥ ३७ ॥

पतितश्च मृतः सोत्रै भूयतामृषिसत्तम ? ।
अज्ञानतो वृतं जातं रात्रौ जागरणं तथा ॥ ३७ ॥

शिवशङ्कर की कृपा से यमराज के दूत आ गये और शिव के गण भी आये दोनों में झगड़ा हुआ शिवगणों ने कहा कि तुम किस प्रकार से आये इस

को दण्ड क्योंकर हो सकता है। उन गणों ने कहा शिव भगवान् के भक्त तुम यहां कैसे आये यम के गण बोले जन्म प्रभृति इसने पाप ही किया है पूजन तो बहुत थोड़ा है ॥ ४१ ॥

जन्मप्रभृति पापं च पुण्यं तु ह्यणुमात्रकम् ॥ ४१ ॥

शिवगण बोले इसमें पाप तो बहुत था परन्तु वह क्षण मात्र में शिव के व्रत और रात्रि के जागरण से भस्म हो गया ऐसा विवाद करते हुये दोनोंके दूत यमराज के पास गये ॥

पापं बहुतरं चाऽऽसीद्भस्मसाद् भवत्क्षणात् ।
शिवस्यव्रतेनैव रात्रौ जागरणेन च ॥ ४२ ॥
इत्येवं विवदंतश्च धर्मराजं गतास्तदा ॥ ४३ ॥

यमराज ने उन दोनों के वचन सुन कर कहा कि अवश्य ही उसके पाप भस्म हो गये ऐसा कह कर यमराज ने उन शिव गणों को नमस्कार कर ब्राह्मण को कलिंग देश का राजा किया ॥ ४४ ॥

यमेनोक्तं च सत्यैव पापं च भस्मतां गतम् ।
नमस्कारं च तान्कृत्वा कलिंगाधिपतिं तदा ॥ ४४ ॥

फिर उसने अपने राज्य में शिव पूजा और शिवरात्री व्रत और शिव स्थानों में दीपक जलाने की आज्ञा देदी इस प्रकार करने से वह मुक्त होगया इस व्रत का माहात्म्य तो देखो अनायास ही करने से क्या उपरोक्त फल मिला जो परम भक्ति से इस व्रत को करते हैं वह निस्संदेह परम भक्ति को प्राप्त होते हैं ॥

ये पुनः परमाभक्त्या कुर्वन्ति व्रतमुत्तमम् ।
ते लभन्ते परां मुक्तिं किं तत्र विस्मितः पुनः ॥ ४८ ॥

इसने कुछ दीपक श्रेष्ठ बुद्धि से नहीं किन्तु चोरी करने को जलाया था तो ऐसा हुआ जो जान कर दीपक बालते हैं वे सुन्दर परम पदको पाते हैं ॥४९॥

चौर्यार्थे न सुबुद्धया च दीपं तु कृतवान्नहि ।
ज्ञात्वा दीपं च ये कुर्युर्लभन्ते तंशुभं पदम् ॥ ४९ ॥

इस कारण इस व्रत के समान दूसरा व्रत नहीं शिव के समान दयालु पवित्र करने वाला कोई नहीं ॥ ५० ॥

चतुर्थी व्रत ।

भविष्य पुराण अ० २१ में लिखा है कि जो चतुर्थी के दिन व्रत कर गणेश का पूजन करता है और ब्राह्मण को तिलों का दान कर आप भी तिलों का भोजन करे जो दो वर्ष तक धारण करे उस से गणेश जी प्रसन्न हो जाते हैं फिर किसी प्रकार का क्लेश नहीं होता मनो वांछित फल मिलता है असाध्य कार्य्य सिद्ध होते हैं सात जन्म वह राजा होता है। स्वामिकार्तिक स्त्री पुरुषों का लक्षण बना रहे थे उस में गणेशजी ने विघ्न किया उन्होंने क्रोध में आकर गणेशजी का एक दांत उखाड़ कर फेंक दिया और मारने को उद्यत हुये तब महादेव जी ने उनके कोप को शांत कर पूंछा कि तुमको क्योंकर कोप आया तब उन्होंने कहा कि मैं स्त्री पुरुषों के लक्षण लिख रहा था उस में इन्होंने विघ्न किया तब महादेव जी ने कहा कि क्या तुम जानते हो कहो इस में क्या लक्षण ? तब कार्तिकेय ने कहा कि आप में ऐसा लक्षण है जिससे आप थोड़े ही दिनों में कपाल धारण करेंगे और संसार में आप कपाली प्रसिद्ध होंगे महादेवजी यह सुन क्रोधमें हो उसकी पुस्तक को समुद्रमें फेंक अन्तर्ध्यान होगये फिर कुछ काल के पीछे महादेव और ब्रह्माका विवाद हुआ तब महादेवजीने कहा कि हम बड़े हैं हमारी उत्पत्ति कोई नहीं जानता और तुम्हारा जन्म हम जानते हैं तब ब्रह्माका पांचवां मुख हँसकर बोला कि तुम्हारी उत्पत्ति हम जानते हैं शिवको क्रोध आया अपने नखसे उनका शिर काट अपने हाथमें ले जहां विष्णु भगवान् तप करते थे वहां चले गये, इधर ब्रह्माने क्रोध किया तो उनके उसके उस कटे हुये शिरसे एक अति क्रूर पुरुष निकला जो श्वेत कुण्डल धार कवच पहिने धनुषबाण हाथ में लिये ब्रह्माजी से बोला कि क्या आज्ञा, उन्होंने कहा कि जिस ने मेरा शिर काटा है उसको मारदे उसको देख शिवजीने विष्णु से कहा कि त्रिशूलसे हमारी भुजाको भेदन करो उन्होंने ऐसा ही किया फिर तो उसमें से रुधिरकी एक धारा निकली और उछलकर कपाल में गिरी जब वह मर गया उसको शिवजीने तर्जनी अंगुली से मथा तब उसमें से रक्तवर्ण कवच पहिने अति भयङ्कर पुरुष निकला और शिवजी से कहा कि क्या आज्ञा तब उन्होंने कहा कि ब्रह्माके भेजे हुये मनुष्यको मार दो निदान

दोनोंका युद्ध होने लगा और बहुत कालतक हुआ परन्तु हारजीत किसी की नहीं हुई तब आकाशवाणी हुई कि युद्ध मत करो विष्णु महाराजने दोनों को समझाकर युद्ध समाप्त करा दिया और कहा कि भूमिका भार उतारने के लिये तुम दोनों सहित अवतार होगा भगवान् ने श्वेतकुण्डली सूर्यनारायण को और रक्तकुण्डली इन्द्रको सौंपदिया और विष्णुके कहने से कपाल महादेव जीने धारण किया और कहा कि जो कोई उस कपाल व्रत को धारण करेगा उसको कोई पदार्थ दुर्लभ न होगा फिर शिवजीकी आज्ञानुसार कार्त्तिकेयने वह गणेशका दांत देदिया जिसको धारण करते हैं और जो स्त्री पुरुष के लक्षण बनाये थे वह समुद्र ने देदिये इसीकारण महादेवके कहने से उनका नाम सामुद्रिक हुआ।

पण्डितजी—सेठजी अब हम व्रत माहात्म्य अधिक नहीं सुनना चाहते।

सेठजी—मैं तो अभी आपको अनेकान व्रतों के माहात्म्य सुनाना चाहता हूं अभी आपने इस विषयमें बहुत ही कम सुना है तो भी मैं आपकी आज्ञानुसार किसी व्रतके माहात्म्यको वर्णन करूंगा, देखिये श्रीमान् पण्डितजी यजुर्वेद अध्याय १६ म० ३० में कहा है।

(व्रतेन दी०) जब मनुष्य धर्मको जानने की इच्छा करता है तब सत्य को जानता है उसी सत्य में मनुष्यों को श्रद्धा करनी चाहिये असत्य में कभी नहीं। (व्रतेन०) जो मनुष्य सत्यके आचरणरूपी व्रतको दृढ़तासे करता है तब वह दीक्षा अर्थात् उत्तम अधिकारके फलको प्राप्त होता है (दीक्षयाऽऽप्नोति०) जब मनुष्य उत्तम गुणों से युक्त होता है तब सब लोग सब प्रकार से उसका सत्कार करते हैं क्योंकि धर्म आदि शुभ गुणोंसे ही दक्षिणाको मनुष्य प्राप्त होता है अन्यथा नहीं (दक्षिणा श्र०) जब ब्रह्मचर्य्य आदि व्रतोंसे अपना और दूसरे मनुष्यों का अत्यन्त सत्कार होता है तब उसी में दृढ़ विश्वास होता है क्योंकि सत्य धर्मका आचरण ही मनुष्योंका सत्कार करानेवाला है (श्रद्धया०) फिर सत्य के आचरण में जितनी २ श्रद्धा बढ़ती जाती है उतना २ ही मनुष्य लोग व्यवहार

नोट-पण्डितजी स्वयं विचार कीजिये यहां महादेवका त्रिकालदर्शी होना नष्ट होता है अधिक क्या कहें ब्रह्माने अपने कटे शिरसे विष्णुजीने अपनी भुजामें महादेवसे त्रिशूल लगवाकर एक २ मनुष्य उत्पन्न किया फिर दोनों में लड़ाई हुई कहिये श्रीमान् मनुष्य उत्पन्न करने के क्या २ ढङ्ग हैं इसके उपरान्त सामुद्रिक माहात्म्य फैलाने के लिये यह कथा बनाईगई।

और परमार्थ के सुखको प्राप्त होते जाते हैं अधर्माचरणसे कभी नहीं। इसी के अनुकूल पुराण कह रहे हैं॥

श्रीमद्भागवत स्कन्द ११ अध्याय १७ में लिखा है कि जब तक ब्रह्मचारी गुरुकुलमें रहे तब तक विषय भोग से बच अखण्ड व्रतको धारण करे॥ ३०॥

एवंवृत्तो गुरुकुले वसेद् भोगविवर्जितः।
विद्यासमाप्यते यावद् बिभ्रद् व्रतमखण्डितम्॥३०॥

मार्कण्डेयपुराण अध्याय ४१ में लिखा है कि ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य्य में स्थित रहकर चोरी, लोभ और हिन्सा आदि का त्याग करे यह ब्रह्मचारी का व्रत है॥

अस्तेयं ब्रह्मचर्यञ्च त्यागोऽलोभस्तथैव च।
व्रतानियञ्च भिक्षूणामहिंसा परमाखिवै॥ १६॥

ऐसा ही **लिङ्गपुराण अध्याय** २८ श्लोक २४ में लिखा है।

अस्तेयं ब्रह्मचर्यञ्च अलोभस्त्याग एव च।
व्रतानियंचभिक्षूणां अहिंसापरमात्विह॥ २४॥

महाभारत उद्योगपर्व अध्याय ४४ में लिखा है कि जो मनुष्य ब्रह्मचर्य्य व्रत को पूर्ण रूप से पालन करता है वह इस लोक में शास्त्रकार होता है अन्त को मोक्ष पाता है॥

मःभारत उद्योगपर्व अध्या ४५ में सन्त्सुजात मुनि का वचन है कि अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार कर्म करना, सत्य बोलना, इन्द्रियों को वश में रखना, किसी की उन्नति देख कर न जलना, निन्दा न करना, यज्ञ, दान, अर्थ समेत वेदों का पढ़ना, क्रोध न करना, तप करना, आपत्ति के समय में भी सत्य को न त्यागना यही व्रत हैं जो इन व्रतों को धारण करता है वह सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने आधीन कर सका है॥ भाषा अ० ४३ में है॥

धर्मश्च सत्यंच तपोदमश्च अमात्सर्यं ह्रीस्तितिक्षानसूया।
दानंश्रुतश्चैवधृतिः क्षमा च महाव्रता द्वादश ब्राह्मणस्य॥५॥

वाल्मीक रामायण आरण्य काण्ड सर्ग ४७ में लिखा है कि जब रावण संन्यासी का रूप धारण कर सीता के निकट गया और उनसे वृत्तान्त पूंछा तब सीता जी ने कहा कि हमारे स्वामी पिता की आज्ञा में दृढ़व्रत १४ वर्ष वन में रहने के लिये उद्यत होगये क्योंकि उन्होंने दो बातों की प्रतिज्ञा की थी एक यह कि दान दें पर लें न किसी से। द्वितीय सदा सत्य बोलें झूठ कभी नहीं। हे ब्राह्मण ! श्री रामजी ने यह उत्तम व्रत धारण किये हैं॥

पद्मपुराण सृष्टि खण्ड अध्याय १८ में कहा है जो मनुष्य एकान्त में बैठने का स्वभाव रखते हैं वह दृढ़ व्रत होते हैं वा सब इन्द्रियों की प्रीति को उनके विषयों से निवृत्त करते हैं तथा योग में मन लगाते हैं किसी जीव को हिन्सा नहीं करते उनकी मुक्ति होती है सब व्रतों में परायण दमही है इससे इन्द्रियों का दमन अवश्य करना चाहिये क्योंकि षड़ंग सहित चारों वेद पढ़ने से बिना दम के पवित्र नहीं होता ऐसे पुरुष के उत्तम कुल जन्म तीर्थ में स्नान सब ही निरर्थक हैं॥

वाराह पुराण के अध्याय ३७ में वाराहजी ने धरणी से कहा है कि अहिंसा, सत्य, शोच, और ब्रह्मचर्य्य से रहकर बिना आज्ञा के किसी दूसरे का पदार्थ नहीं लेते उन्हीं का व्रत सफल होता है यह व्रत रहने वालों के साधारण धर्म्म हैं॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यम कीर्तितम्।
एतानि मानसान्याहुर्व्रतानि तुधराधरे॥
वेदस्याध्ययनं विष्णोः कीर्त्तनं सत्यभाषणम्॥
अपैशुन्यं हितं धर्म्मवाचिकं व्रतमुत्तमम्॥ ५॥

पण्डित जी यदि कोई पुरुष एक दिन जैसा कि पुराणों की आज्ञा है नियम करे और शेष १४ दिन धर्मानुकूल न चले तो एक दिन के फल से १४ गुणा पाप न होगा फिर भला क्योंकर सब प्रकार के आनन्द मिल सकते हैं॥

महाभारत शांतिपर्व अध्याय २२१ में युधिष्ठिर महाराज ने भीष्मपितामह से प्रश्न किया है कि साधारण लोग जो देह पीड़ा कर उपवास को तपस्या कहा करते हैं क्या यह तपस्या है ? इस पर भीष्मजी ने उत्तर दिया

है कि साधारण लोग जो ऐसा समझते हैं कि एक महीना वा एक पक्ष उपवास करने से तपस्या होती है सो यह आत्मा विद्या की विघ्न स्वरूप तपस्या है । इस लिये यह तपस्या अच्छे पुरुषों की सम्मति के विपरीति है ।

मासपक्षोपवासेन मन्यन्ते यत्तपो जनाः ।
आत्मतन्त्रो पघातस्तु न तपस्तत्सतांमतम् ॥ ४ ॥

गरुड़पुराण अध्याय १६ में लिखा है कि एक बार भोजन करने आदि उपवास करके शरीर सुखाने वाले नियमों को कर मेरी माया से मोहित मूढ़ परोक्ष जो मोक्ष है उस की इच्छा करते हैं सो देही के दण्ड देने मात्र से अविवेकियों की कभी मुक्ति नहीं होती जैसी बांबी की ताड़ना करने से कहीं बड़ा सांप मरता है । पारावत कंकर आहार करता है, पपिया भूमि में गिरे जल को कभी नहीं पीता तो क्या वे व्रती होजाते हैं । कदापि नहीं ।

एक भुक्तोपवासाद्यैर्नियमैः कायशोषणैः ।
मूढाः परोक्षमिच्छन्ति ममभाया विमोहिताः ॥ ६१ ॥
देहदण्डनमात्रेण कामुक्ति रविवेकिनाम् ।
वल्मीक ताडनादेवमृतः कुत्रमहोरगः ॥ ६२ ॥
पारावताः शिलहरा कदाचिदपि चातकाः ।
न पिबन्ति महीतोयं व्रतिनस्ते भवन्तिकम् ॥ ६६ ॥

तिसपर भी पुराणों में लिखा है कि एकादशी के दिन को अन्न भोजन करते हैं वह अपवित्र वस्तु को खाते हैं देखो पद्मपुराण ब्रह्मखण्ड अध्याय १५ में लिखा है ।

येऽन्नमश्नंति पापिष्ठा एकादश्यांहि विड्भुजः । १२

रोगी, लँगड़े, खांसीयुक्त पेट से कोढ़ी उत्पन्न होते हैं अर्थात् संसार में जितने पाप हैं वह सब भोजनों में बसते हैं और एकादशी के दिन जितने अन्न के दाने मनुष्य खाते हैं उनको एक एक दाने में करोड़ ब्रह्महत्या का पाप होता है ।

नरा यावन्तिचान्नानि भुंजते चहरेर्दिने ॥ १८ ॥
प्रत्यन्नंच ब्रह्महत्याकोटिजं वृजिनंभवेत् ॥ १९ ॥

परन्तु श्रीमान् अद् भक्षणे धातु से अन्न शब्द बनता है अर्थात् जो भक्षण किया जाय वह अन्न, चाहे फल हो चाहे दूध चावल ऐसा ही सनातन धर्म सभा के मान्य स्वामी श्रीधरजी ने श्री मद्भागवत की व्याख्या करते हुए दशम स्कंद पूर्वार्द्ध अध्याय २३ के १९ श्लोक की व्याख्या में लिखा है।

चतुर्विधं बहुगुणं मन्नमादाय भाजनैः ॥ १९ ॥

अर्थात् भक्ष्य जो खाया जाये जैसे चना चबेना रोटी पूरी भोज्य दाल भात लेह्य जो चाटा जाय कढ़ी और चोष्य जो चूसा जाय जैसे गन्ना और आम आदि फिर श्रीमान् पुराण कहते हैं एकादशी को अन्न मत खाओ फिर भला जो जन एकादशी को दूध, पेड़ा, रबड़ी, आम, अंगूर इत्यादि खाते हैं। वह भी अन्न खाने वाले हुये इसके उपरान्त पद्मपुराणपद्म उत्तरखंड अध्याय ४२ में माघ कृष्ण पक्षकी षटतिला एकादशी के दिन ब्राह्मणों को तिल देना तिलों से स्नान करना, उबटन कराना, तिलों समेत जल देना, तिलों का भोजन करना और हवन करना यह छः तिल पाप के नाशने वाले हैं जैसा कि—

तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी ॥ २१ ॥
तिलदाता च भोक्ता च षट्तिलाः पापनाशनः ॥ २२ ॥

वाराहपुराण अध्याय २० में लिखा है कि एकादशी के दिन अग्नि का पका हुआ अन्न जो नहीं खाता वह नित्य पवित्र है उसको कुबेर देवता प्रसन्न होकर सब कुछ देते हैं जैसा कि—

तस्यब्रह्मा ददौतुष्टस्तिथिमेकादशींप्रभुः।
तस्यामनग्नि पक्वाशी योभवेन्नियतं शुचिः।
तस्यापिधनदो देवस्तुष्टः सर्वं प्रयच्छति ॥ ६ ॥

इससे तो यह भी प्रकट होता है कि जो अन्न अग्नि से पका हुआ न हो उसको एकादशी के दिन खाले यदि अग्नि से सूर्य्य का अर्थ लें तो फिर फलादि वस्तु न खानी चाहिये और यदि भौतक अग्नि से प्रयोजन है तो फिर चावल आदि पानी से भिगोकर एकादशी को चबा कर निर्वाह कर सकते हैं फिर भूखे रहने की कोई आवश्यकता नहीं इसके अतिरिक्त जब एकादशी के दिन ब्राह्मणों

को तिल भोजन कराने की आज्ञा पुराण दे रहे हैं तो फिर अन्न का निषेध कहां रहा क्या यह लेख आप की समझ में व्यासजी से योग्य महात्मा के हो सकते हैं कदापि नहीं। इस के उपरांत भूखे मनुष्य की बुद्धि ठीक नहीं रहती। फिर वह अपने कार्य्यों को ठीक नहीं कर सकता इस लिये वैद्यक शास्त्र में भूखे रहने और अधिक भोजन करने का निषेध किया पुराणों में भी लिखा है कि शक्ति, खड्ग, गदा, चक्र, तोमर, बाणादिकों से पीड़ित पुरुषों की पीड़ा से भूख की पीड़ा अधिक होती है श्वास, कोढ़, क्षयी, ज्वर, मृगी, शूल आदि रोगों से पीड़ित पुरुष की पीड़ा से भूख की पीड़ा अधिक होती है सुवर्ण कुण्डलादि से भूषित पुरुष जब क्षुधित होते हैं तब शोभित नहीं होते जिस प्रकार पृथ्वी पर सब पानी सूर्यनारायण शोष लेते हैं उसी भांति क्षुधा से पीड़ित मनुष्य के शरीर की सब नसें सूख जाती हैं और जब मूढ़ क्षुधा से क्षुधित होते हैं तो तब उनको कुछ नहीं सूझता वह मर्यादा से बाहर हो जाते हैं वह लोग माता, पिता, पुत्र, स्त्री, कन्या, भ्राता स्वजन बान्धव को छोड़ देते हैं और वह देवताओं और पितरों गुरु ऋषियों धेनुओं की पूजा नहीं कर सकते हैं और विपरीत इसके जो क्षुधित नहीं होता वह इन सब कामों को अच्छे प्रकार कर सकता है इस लिये कहा है कि जगत् में अन्न से श्रेष्ठ कोई पदार्थ नहीं यथार्थ में अन्न ही जगत् का मूल है इस हेतु अन्न दान का बड़ा माहात्म्य कहा है सत्य पूछो तो तप, सत्य, जप, होम, ध्यान, भोग, सद्गति व स्वर्ग यह सब अन्न ही में निवास करते हैं इस हेतु जो कोई श्रद्धा से भूखों को अन्न देता है वह मानों सब तीर्थों में स्नान और व्रतों को करता है देखो पद्मपुराण सृष्टि खण्ड अध्याय १९।

इस लिये हमारी समझ में तो प्रत्येक मनुष्य को सदा पथ्यापथ्य का विचार कर मिताहारी हो पञ्चकर्म इन्द्रिय और ग्यारहवें मन अर्थात् इन एकादश को जिन की एकादश संख्या है सदा नियम में चलने का नाम एकादशी व्रत है न कि अन्न न खाने का।

प्रिय पाठक गण ! यह उपरोक्त व्रत सनातन व्रत हैं इनके पालन करने से बेड़ा पार हो जाता है जिन की सम्पूर्ण ऋषि, मुनि और महात्मा आज्ञा दे रहे हैं देखिये।

महाभारत शान्तिपर्व अध्याय २६८ में लिखा है कि जो मनुष्य बाहु, वाक्य, उदर और उपस्थ इन चारों द्वारों की रक्षा करते हैं। वह सर्व प्रकार के सुख भोगते हैं इस लिये जुआ न खेले, मांगने का स्वभाव न बनाये, क्रुद्ध होकर किसी पर प्रहार न करे, वृथा वचन न कहे, जो जन सत्यवती और मितभाषी रहते हैं उन का वचन रूपी द्वार अच्छे प्रकार रक्षित रहता है। अनशन (उपवास) अवलम्बन न करे, और अधिक भोजन भी न करे, लोलुपता को छोड़ साधुओं का सत्संग करे। इस लोक में देह यात्रा के लिये थोड़ा सा आहार करे जो ऐसा करते हैं उनकी जठर अग्नि की उत्तम प्रकार रक्षा होती है। भार्याव्रत को धारण करे ऐसा करने से उपस्थ की रक्षा होती है।

वनपर्व अध्याय २५६ में कहा है कि सत्य, कोमलता, क्रोध, न करना दान, दम, शम, किसी के सुख को देख कर दुःखी न होना, हिन्सा न करना, पवित्रता और इन्द्रियों को अपने वश में रखना यही धर्म के दश लक्षण हैं उन्हीं से महात्मा लोग पवित्र होते हैं अधर्मी पापी और मूर्ख लोग इन दश का आदर नहीं करते इसी से वे लोग नीच योनियों में जन्म लेते हैं और सुख को प्राप्त नहीं होते जो जितेन्द्रिय और शाँति हैं उनको क्लेश कभी नहीं होता जिसने अपने मन को वश में कर लिया है वह कभी दूसरे की लक्ष्मी को देख कर दुःखी नहीं होता हिन्सा न करने वाले को कभी रोग नहीं होता जो माननीय पुरुषों का मान करता है वह उत्तम कुल में जन्म धारण करता है।

इस लिये **पंडितजी** व्रतों के मुख्य अभिप्राय को जान यथावत् व्रतों का प्रचार कीजिये जिस से भारत का कल्याण हो। ओ३म् शम्।

श्रीमान् पण्डितजी और अन्य सभ्य गणों ने चलने की तय्यारी की।

सेठजी ने दोनों हाथ जोड़ सब सज्जनों से नमस्ते की—श्रीमान् पण्डित जी और अन्य महाशयों ने यथायोग्य कहा और चल दिये सेठजी अपने मित्रोंसे वार्तालाप करने में लग गये।

इति एकादश परिच्छेदः।

———※———

द्वादश परिच्छेदः।

आर्य्य सेठ—श्रीमान् पण्डितजी को अन्य सभ्य गणों के सहित आते देख दोनों हाथ जोड़ नमस्ते कह कहा कि आइये पधारिये।

श्रीमान् पण्डितजी और अन्य जन यथायोग्य कह विराजमान हुए।

इतने में लाला छंगेलाल व ठाकुर तेकरामसिंह व लाला मन्नीलाल बाबू तोताराम, लाला मूलचन्द, लाला नारायणलाल, लाला पीतमराम साहियान जो बाहर से आये हुये थे पधारे सब सज्जनों को यथायोग्य कह उचित स्थानों पर सुशोभित हुये।

श्रीमान् पंडितजी ने आशीर्वाद दिया।

सेठजी ने और अन्य महाशयों ने यथा योग्य कह कुशल क्षेम पूंछने के पश्चात् सेठजी ने कहा कि आज मैं तीर्थ विषय सुनाता हूं।

पंडितजी—बहुत अच्छा।

सेठजी—श्रीमान् पण्डितजी महाराज तीर्थों की संख्या **शिवपुराण** सनत्कुमार संहिता अध्याय १४ में छः करोड़ छः हजार लिखी है जैसा कि—

षष्टिकोटि सहस्राणि षष्टिकोटि शतानिच।
षष्टितीर्थ सहस्राणि परिसंख्या प्रकीर्तिता॥ ६॥

जिनमें से अनेकान तीर्थों के बड़े बड़े माहात्म्य पुराणों में लिखे हैं जिनको सुन और परम कल्याण का कारण जान सहस्रों स्त्री पुरुष उनके दर्शन स्नानादि में लगे रहते हैं और तन मन धन के उपरांत अपने प्राणों को भी दे देते हैं परन्तु शोक इतना ही है कि पुराणों के वचनों पर विचार नहीं करते और न वेद की आज्ञा को श्रवण करते हैं पण्डित जी तीर्थ शब्द "तृप्लवन सन्तरणयो" इस धातु से औणादिक थक् प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है "तरन्तियेन यस्मिन् वा तत्तीर्थम्" अर्थात् जिससे जन तरते हैं उसको तीर्थ कहते हैं देखिये यजुर्वेद अध्याय १६ मंत्र ६७ में लिखा है।

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सकाहस्ता निषङ्गिणः तेषां ꣳ
सहस्रयोजने ऽवधन्वानि तन्मसि॥

अर्थात् तीर्थ दो प्रकार के हैं पहिले तो वह हैं जो ब्रह्मचर्य्य गुरुकी सेवा, वेदादि शास्त्रों का पढ़ना, पढ़ाना, सतसंग, ईश्वर की उपासना, सत्य सम्भाषण आदि दुःख सागर से मनुष्यों को पार करते हैं और दूसरे वह जिन से समुद्रादि जलाशयों के पार आने जाने में समर्थ होते हैं। इस मंत्रकी व्याख्या से अच्छे प्रकार विदित हो रहा है जिस प्रकार मल्लाह नाव के द्वारा समुद्रादिक जलाशयों से पार कर देता है ठीक अविद्या रूपी भवसागर से योगी जन योग रूपी नौका पर सवार कराकर पार कर देते हैं ऐसे महान् पुरुषों को महात्मा, साधु, संत, वैरागी सन्यासी आप्त इत्यादि नामों से सूचित करते हैं और उन्हीं सज्जन पुरुषों के चरणों को तीर्थ स्वरूप कहा है देखिये।

श्रीमद्भागवत स्कन्द ३ अध्याय १ श्लोक में विदुरजी के चरणों को तीर्थ रूप कहा है "गजाह्वयात्तीर्थपदःपदानि" स्कन्द ४ अध्याय १२ में ध्रुव जी के चरणों में तीर्थ बतलाया है "तीर्थपादपदाश्रयः" ॥

पद्म पुराण चतुर्थ ब्रह्मखंड अध्याय १४ में लिखा है कि जितने तीर्थ ब्रह्माण्ड में हैं और जितने तीर्थ समुद्र में स्थित हैं वे सब ब्राह्मणों के चरणों में स्थित हैं॥

ब्रह्माण्डेयानितीर्थानि तानितीर्थानि सागरे।
उदधौयानितीर्थानि तिष्ठन्ति द्विजपादयोः॥ १२॥

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण कृष्ण जन्म खण्ड अध्याय ३१ में लिखा है कि ब्राह्मणों के पैर के धोये हुए जल में सर्व तीर्थ निवास करते हैं।

इस कारण उनके पैरों के स्पर्श से सम्पूर्ण तीर्थों के स्नान का फल प्राप्त होता है।

पादोदके च विप्राणां तीर्थतोयानि सन्ति च।
तत्स्पर्शात् सर्वतीर्थेषु स्नानजन्मफलंलभेत्॥ ६४॥

श्रीमान् इस कथन का तात्पर्य्य यह है कि ज्ञानियों, महात्माओं, पण्डितों, साधुओं के सतसंग से ज्ञान की प्राप्त होती है इस लिये प्राचीन काल में जहां कहीं ऐसे महात्मा और ऋषि निवास करते थे वही स्थान तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो जाते थे चाहे वह गंगा, यमुना, नर्मदा, कावेरी, व्यास आदि नदियों के

समीप हों अथवा वन जङ्गल और पहाड़ों की चोटियों पर क्यों न हों। जैसा कि,

महाभारत वनपर्व अध्याय १९९ में कहा है कि जानने वाले, व्रत करने वाले, ज्ञानी, तपस्वी, ब्राह्मण जहां रहते हैं उसी का नाम नगर है। हे राजन्! गांव में अथवा जङ्गल में जहां ब्राह्मण रहते हैं उसी को नगर कहते हैं वही तीर्थ माना जाता है॥

वेदाढ्या वृत्तसम्पन्ना ज्ञानवन्तस्तपस्विनः।
यत्र तिष्ठन्ति वै विप्रास्तन्नाम नगरं नृप॥
व्रजे वाप्यथवारण्ये यत्र सन्ति बहुश्रुताः।
तत्तन्नगरमित्याहुः पार्थ तीर्थं च तद्भवेत्॥

शिवपुराण धर्म संहिता अध्याय १० श्लोक ६४ में कहा है कि जिस स्थान पर एक दिन व आधे दिन जहां शिव योगी रहते हैं वही मङ्गल स्थान पवित्र तीर्थ है॥

दिवसं दिवसार्धं वा यत्र तिष्ठन्ति योगिनः।
तन्मांगल्यं पवित्रं च तत्तीर्थं तत्तपोवनम्॥ ६४॥

और ऐसे महान् पुरुषों के सत्संग करने की आज्ञा वेदादि सत्य ग्रन्थों में है और पुराणों में भी लिखा है देखिये।

शिवपुराण धर्मसंहिता अध्याय २७ में कहा है कि साधु, महात्मा निश्चय तीर्थ रूप हैं तीर्थों का फल कालान्तर में होता है और साधु, महात्माओं की सङ्गति का फल तुरन्त मिलता है और अनन्त फल देता है इससे साधुओं की सङ्गति करनी आवश्यक है।

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः॥

क्योंकि साधुओं के संग से शास्त्रों का सुनना होता है जिस से भगवान् की भक्ति उससे ज्ञान और ज्ञान की गति होती है। जैसा कि पद्मपुराण चतुर्थ ब्रह्मखण्ड अध्याय १ श्लोक ६ में लिखा है।

साधु संगाद्भवेद्विप्र शास्त्राणां श्रवणं प्रभो ।
हरिभक्तिर्भवेत्तस्मात्ततोज्ञानं ततोगतिः ॥ ६ ॥

पञ्चम पातालखण्ड अध्याय १९ में लिखा है कि परमेश्वर पापवर्जित साधुओं के सत्सङ्ग से जाने जाते हैं उनकी कृपासे मनुष्य दुःख रहित हो जाते हैं ॥ १४ ॥ वह साधु काम, लोभ रोगादि से रहित जो कुछ वह कहते हैं वह संसार में निवृत्त करने वाला है ॥ १५ ॥ इस लिये संसार से डरते हुये मनुष्यों को तीर्थों में अवश्य जाना चाहिये क्योंकि उन तीर्थों में उत्तम जल और वहां साधुओं की श्रेणी विराजती है ।

तस्मात्तीर्थेषु गंतव्यंनरैः संसारभीरुभिः ।
पुण्योदकेषु सततं सधुश्रेणि विराजिषु ॥

षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय १३२ में लिखा है कि जिस प्रकार सूर्य्यनारायण के संयोग से सूर्य्यकान्तमणि में अग्नि उत्पन्न हो जाती है उसी भांति साधुओं के संयोग से भगवान् में भक्ति उत्पन्न होती है ॥ १३ ॥

इसी हेतु जब युधिष्ठिर महाराज ने तीर्थयात्रा का विचार प्रकट किया उस समय नारद मुनि ने पाण्डवों से कहा कि तीर्थों में जाने से वाल्मीक, कश्यप, आत्रेय, विश्वामित्र, गौतम, देवल, मार्कण्डेय, तपस्वियों में श्रेष्ठ शुकदेव, दुर्वासा, जाबाली इत्यादि, ऋषियों के दर्शन होंगे और महात्मा धौम्यजी ने कहा है कि तीर्थों में वसु, साध्य, सूर्य्य, वायु और अश्विनीकुमार देवों के समान ऋषि लोग निवास करते हैं देखो महाभारत वनपर्व अध्याय ८५ व ९० ।

मत्स्य पुराण अध्याय १९८ में लिखा है कि मुनि अत्रि, कश्यप, याज्ञवल्क्य, संवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, नारद और गौतमादिक धर्म की इच्छा करने वाले ऋषि, गंगा, कनखल, प्रयाग, पुष्कर, और गया इत्यादि तीर्थों में निवास करते हैं ॥ ११ ॥

श्रीमान् पण्डितजी प्राचीन काल में जो गृहस्थ तीर्थ यात्रा जाने का विचार करते थे वह विशेष कर नियम और यम के पालन का ध्यान बनाये रहते थे क्योंकि—

महाभारत वनपर्व अध्याय २९९ में कहा है तीन दण्ड का धारण करना, जटा बढ़ाना, शिर मुड़वाना, मौनी होना, छाल पहरना, मृगचर्म धारण

करना, व्रत अर्थात् भूखे रहना, स्नान करना, अग्निहोत्र करना, वन में रहना, शरीर को सुखाना 'यदि भाव शुद्ध नहीं तो सब ही' मिथ्या है।

त्रिदण्डधारणं मौनं जटाभारोऽथ मुण्डनम्।
वल्कलाजिन सवेष्टं व्रतचर्याभिषेचनम् ॥ ६३ ॥
अग्निहोत्रं वनेवासः शरीरपरिशोषणम्।
सर्वाण्येतानि मिथ्यास्युर्यद्भावोन निर्मलः ॥ ६४ ॥

हे राजन्! अन्न न खाना सहज है परन्तु अन्न खाकर इन नेत्र आदि छः इन्द्रियों का रोकना कठिन है उस में सब को विकार देने वाला मन को रोकना बहुत ही कठिन है जो मन बुद्धि और वाणी से पाप नहीं करते वही तपस्वी हैं। शरीर को सुख देना अन्न न खाना तप नहीं कहलाता जो घर में रह कर पवित्र रहता है वही मुनि है।

न दुष्करमनाशित्वं सुकरं ह्यशनं विना।
विशुद्धिश्चक्षुरादीनां षण्णामिन्द्रिय गोमिनाम् ॥ ६६ ॥
विकारितेषां राजेन्द्र सुदुष्करतरंमनः।
ये पापानि न कुर्वन्ति मनोवाक् कर्मबुद्धिभिः ॥ ६७ ॥
तेतपन्ति महात्मानो न शरीरस्य शोषणम् ॥ ६८ ॥

पद्मपुराण षष्ठ उत्तर खण्ड अध्याय ८० में लिखा है कि चीर वस्तु, धारण करना, जटा रखाना, दण्ड का रखना व मूड़ मुड़वाना इत्यादि चिह्न धर्म के कारण नहीं हैं ॥ १०४ ॥

चीरवासा जटीविप्र दण्डी मुण्डित एववा।
विभूषितोवा विप्रेन्द्र न लिङ्गं धर्म कारणम् ॥

शिवपुराण धर्म संहिता अध्याय २६ श्लोक ७ में लिखा है कि रागी पुरुषों को वन में दोष होते हैं घर में पंचेन्द्रिय निग्रह करना तप है अकुत्सित कर्म में प्रवृत्त होने से राग रहित पुरुष को घर ही में तपोवन है।

वनेपिदोषाः प्रभवन्ति रागिणां।
गृहेपि पंचेन्द्रिय निग्रहस्तपः ॥

अकुत्सिते कर्मणिय: प्रवर्तते ।
निवृत्तरागस्य गृहे तपो वनम् ॥ ७ ॥

पण्डितजी जिस प्रकार बिना पथ्य के उत्तम से उत्तम औषधी कुछ लाभ नहीं करती उसी प्रकार वेद व शास्त्रादिक के पठन से मुक्ति नहीं होती वरन् मुक्ति का कारण ज्ञान युक्त कर्म करना ही है इसी हेतु पुराणों में भी लिखा है कि जो कर्म ज्ञान पूर्वक किये जाते हैं वह कल्याण के दाता होते हैं अन्यथा नहीं-इसी भांति ऋषि उपदेश भी यथार्थ में मुक्ति देने वाला है परन्तु जब तक उनकी आज्ञानुसार कार्य्य न किया जावे तब तक लाभदायक नहीं होता इस लिये प्राचीन जन जब तीर्थों में जाते थे तब वह गंगा, यमुना, नर्बदा इत्यादि नदियों वा अन्य तालाब आदि पवित्र जलों में स्नान कर शरीर शुद्धि के पश्चात् आत्म शुद्धि के अर्थ महात्मा जनों का सत्संग कर आचरण सुधार आनन्द प्राप्त करते थे क्योंकि मनकी शुद्धि के विना अन्य किसी प्रकार से भी यथार्थ शुद्धि नहीं होती जैसा कि—

पद्मपुराण द्वितीय भूमिखण्ड अध्याय ६६ में कहा है कि चाहे पर्वत के समान मिट्टी मले और गंगा जलके सारे जल से मृत्यु पर्यन्त स्नान करता रहे तौ भी दुष्ट स्वभाव और दुष्ट विचार वाला मनुष्य शुद्ध नहीं होता ॥ ८३, ८४ ॥

गंगातोयेन सर्वेणमृद्भारैर्गिरिसन्निभैः ॥ ८३ ॥
मर्त्यो दुर्गंधदेहोसौभावदुष्टोन शुध्यति ।
तीर्थ स्नानैस्तपोभिश्च दुष्टात्मानच शुध्यति ॥ ८४ ॥

शिवपुराण—वायु संहिता उत्तरार्द्ध अध्याय ११ में लिखा है कि जिस के अंतःकरण में अशुद्धि है वह पवित्र भी अपवित्र है ॥ ५७ ॥

शिवपुराण—धर्म संहिता अध्याय ४२ में लिखा है कि जीवन पर्य्यन्त शुद्धता करने पर भी दुष्ट स्वभाव वाला मनुष्य तीर्थ स्नान और तप करने से शुद्ध नहीं होता ॥ ८२ ॥

आमृत्योराचरेच्छौचं भावदुष्टो न शुद्ध्यति ।
तीर्थस्नानैस्तपोभिर्वा दुष्टात्मा नैव शुद्ध्यति ॥ ८२ ॥

क्या कुत्ता तीर्थ में स्नान करने से शुद्ध हो सकता है। (कभी नहीं) जो अन्तर्भाव से दुष्ट हो वह चाहे अग्नि में प्रवेश कर जाय तो उसकी देह दग्ध करने से स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

श्वदतिः क्षालिता तीर्थो किं शुद्धिमधिगच्छति ।
अंतर्भाव प्रदुष्टस्य विशतोपि हुताशनम् ॥ ८३ ॥
न स्वर्गो नापवर्गश्च देहनिर्दहनं परम् ॥ ८४ ॥

दुष्ट स्वभाव वाला मनुष्य चाहे सब प्रकार गंगा जल से स्नान करे चाहे मिट्टी के पर्वतों से हाथ मांज डाले जन्म पर्य्यन्त जो स्नान करे। तथापि वह शुद्ध नहीं हो सकता ॥ ८५ ॥

सर्वेण गांगेन जलेन सम्यङ् मृत्पर्वते नाप्यथ भावदुष्टः ।
आजन्मनःस्नान परो मनुष्यो न शुद्ध्यतीत्येव वयं वदाम ८५

गंगादि तीर्थों में नित्य मत्स्यादि निवास करते हैं देवालयों में पक्षी रहते हैं भाव हीन होने से यह फल तीर्थ में अवगाहन करने और दान देने से नहीं मिलता ॥ ८७ ॥

गंगादि तीर्थेषु वसंति मत्स्या देवालये पक्षिगणाश्चनित्यम् ।
भावोज्झितास्ते नफलं लभंते तीर्थावगाहाच्च तथैवदानात् ८७

इस लिये शुद्ध भाव होना ही सब कर्म्मों में प्रमाण है।

भाव शुद्धं परं शौचं प्रमाणं सर्व कर्मसु ॥ ८८ ॥

भाव के शुद्ध होने से प्राणी स्वर्ग और मोक्ष को पाता है ॥ ९२ ॥

भावतः शुचिः शुद्धात्मा स्वर्गं मोक्षं च विंदति ॥ ९२

इस हेतु ज्ञानरूपी जल और वैराग्यरूपी मृत्तिका से शरीर के अविद्यारूपी रागद्वेप आदि मलों को धोवे वही शुद्ध होता है।

ज्ञानामलांभसापुंसां सद्वैराग्यमृदा पुनः ।
अविद्यारागविण्मूत्रं लेपगन्धविशोधनम् ॥ ९४ ॥

वृहन्नारदीय उपपुराण अध्याय ३१ में लिखा है कि शुद्धि दो प्रकार की होती है एक बाह्य और दूसरे आभ्यन्तर जिसमें मृत्तिका, जलसे बाहर

की और भाव की शुद्धि से भीतर की पवित्रता होती है ऋषियों ने कहा है कि अंतःकरण की शुद्धि के विना जो यज्ञ आरम्भ किये जाते हैं वे फलित नहीं होते जिस प्रकार भस्म में होम किया निष्फल है इस लिये दुष्ट जन हजार भार मृत्तिका और करोड़ों कलशों के जलों से शौच करे पर वह चांडाल ही कहाता है। जो मनुष्य अंतःकरण की शुद्धि के विना बाहर की शुद्धि करता है वह सजाये हुये मदिरा के घड़े के समान है इस लिये जो कोई विना चित्त शुद्ध किये तीर्थ यात्रा करते हैं तो उनको तीर्थ पवित्र नहीं करते जैसे मदिरा पात्र को नदियां शुद्ध नहीं कर सकतीं।

लिंगपुराण पूर्वार्द्ध अध्याय ८ में लिखा है कि बाहर से शौच कितना ही करे और मृत्तिका से देह को लीप लीप कर स्नान करे जो अंतःकरण शुद्ध न होय तो सदा ही मलीन हैं ॥ ३३ ॥

क्योंकि मत्स्य मण्डूक आदि सदा जल में डूबे रहते हैं वे क्या शुद्ध हो जाते हैं इस से अन्तर शौच ही मुख्य है ॥ ३४ ॥

इस लिये वैराग्यरूपी मृत्तिका से शरीर को लिप्त करके आत्मज्ञानरूपी जल में स्नान करे यही शौच मुख्य है क्योंकि शुद्ध पुरुष की ही सिद्धि होती है। अशुद्ध की नहीं।

आत्मज्ञानाम्भसि स्नात्वा सकृदालिप्यभावतः।
सुवैराग्यमृदा शुद्धः शौचमेवं प्रकीर्त्तितम् ॥ ३६ ॥
शुद्धस्य सिद्धयो दृष्टा नैवाशुद्धस्य सिद्धयः ॥ ३७॥

अध्याय २५ में लिखा है कि जिसका अन्तःकरण शुद्ध नहीं चाहे वो कितने जल से स्नान करे परन्तु शुद्ध नहीं होता अर्थात् दुष्ट भाव पुरुष का किसी नदी व सरोवर में स्नान करने से शुद्ध होना कठिन है। मनुष्योंका चित्त कमल अज्ञान रूपीरात्रिसे संकुचित हो रहा है इसको ज्ञानरूपी सूर्य की किरणों से विकसित करना उचित है।

गरुड़पुराण अध्याय १६ श्लोक ६८ में लिखा है जन्मसे लेकर अन्ततक गंगा आदि नदियों में जो मेंडक, मछली इत्यादि रहते हैं तो क्या वे योगी होजाते है अर्थात् नहीं ॥ ६ ॥

आजन्म मरणान्ते च गङ्गादितटिनीस्थिताः।

मण्डूक मत्स्यप्रमुखा योगिनस्ते भवंति किम् ॥

इसी हेतु पद्मपुराण पातालखण्ड अध्याय ६८ के श्लोक ७८ में लिखा है कि जो मनुष्य गंगादि पुण्यतीर्थों में स्नान करते हैं और वह पुरुष जो महात्माओं का सत्संग करते हैं इन दोनों से सत्संग करने वाला ही श्रेष्ठ है ॥

गंगादिपुण्यतीर्थेषु यो नरः स्नाति सर्वदा ।

यः करोति सतां संगं तयोः सत्संग मोवरः ॥ ७८ ॥

मार्कण्डेय पुराण अध्याय १८ में दत्तात्रेय जी महाराज ने कहा है कि जो मनुष्य सत्संग रूपी पत्थर पर सान रूपी कुल्हाड़ी को तेज करके इस ममता रूपी वृक्षको काट डालते हैं वही ज्ञानी मनुष्य मुक्तिके मार्ग तथा विना कांटे और धूल के ब्रह्मज्ञानरूपी शीतल वन में परम निवृत्ति को प्राप्त हो संसार के आवागमन से रहित होजाते हैं ॥

गरुड़पुराण अध्याय १ में स्पष्ट रूपसे कहा है । कि जो मनुष्य पापमें रत दया तथा धर्म रहित दुष्टोंकी संगत में मस्त उत्तम शास्त्र के जानने वाले सुजनों के सत्संग से दूर ।

ये हि पापरतास्तात्दर्य दयाधर्मविवर्जिताः ।

दुष्टसंगाश्च सच्छास्त्रसत्संगतिपराङ्मुखाः ॥ १४ ॥

जो अपने को प्रतिष्ठित जानते हैं और नम्रता रहित धन और मानके घमण्ड में चूर असुरभावयुक्त और दैवी सम्पत्तिसे दूर हैं ।

आत्मसम्भाविताः स्तब्धावृताः ।

आसुरं भावमापन्ना दैवीसम्पद्विवर्जिताः ॥ १५ ॥

जिन मनुष्योंका मन पराई स्त्री और धनमें मोहसे मोहित होकर भ्रम रहा है ऐसे मनुष्य नरक में जाते हैं ।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।

इसी कारण जब श्रीमान् युधिष्ठिर इत्यादि पाण्डवों ने तीर्थयात्राकी इच्छा की उस समय ऋषियोंने उनसे कहा है जैसा कि महाभारत वनपर्व अध्याय ८१ में लिखा है । कि तीर्थयात्राका फल उन्हीं मनुष्योंको मिलता है जिनके हाथ, पांव, मन, विद्या और कीर्त्ति वशमें होती है ।

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥ ९ ॥

जो सब घरों से लौट एक किसी स्थान पर सन्तुष्ट होकर रहता है जिसको अहंकार नहीं वही तीर्थ के फलको भोगता है ॥ १० ॥

प्रतिग्रहा दयावृत्तः संतुष्टो येन केनचित् ।
अहंकारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥ १० ॥

जो छल और कार्योंके आरम्भ से दीन, थोड़ा खानेवाला, इन्द्रियजित, सब पापों से रहित होता है वह तीर्थोंके फलों को भोगता है ॥ ११ ॥

अकल्कको निरारम्भो लघ्वाहारी जितेन्द्रियः ।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः च तीर्थफलमश्नुते ॥ ११ ॥

जो क्रोधसे रहित सत्य, शील से भरा हुआ पक्का व्रतधारी अपने समान सब प्राणियों को देखनेवाला हो वहीं तीर्थों के फलको भोगता है ॥ १२ ॥

अक्रोधनश्च राजेन्द्र सत्यशीलो दृढव्रतः ।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते ॥ १२ ॥

और ऐसा ही पद्मपुराण सृष्टिखण्ड अध्याय १६ में लिखा है ।

मत्स्यपुराण अध्याय १११ में कहा है कि जो ब्राह्मण प्रतिग्रहादिक दोनों से निवृत्त, सन्तोषवृत्ती, नियमी, पवित्र अहंकार और क्रोध रहित, सत्यवक्ता, सब जीवोंको अपने समान देखने वाला होता है वह तीर्थके फलको पाता है ।

अकोपनश्च सत्यश्च सत्यवादी दृढव्रतः ।
आत्मोपश्च भूतेषु सतीर्थफलमश्नुते ॥ ११ ॥

शिवपुराण विधेश्वरी संहिता अध्याय १२ में लिखा है कि गंगा आदि तीर्थों में जानेका फल वही जन पाते हैं जो सदाचार सद्भाव और श्रेष्ठ भावना से बुद्धिमान् दयायुक्त रहते हैं अन्यथा फलकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ३५ ॥

सदाचारेण सद्वृत्या सदा भावेन यापि च ।
वसेदयालुः प्राज्ञो वै नान्यथा तत्फलं लभेत् ॥ ३५ ॥

इस लिये पवित्र हृदय और शुद्ध मनसे जो स्नान करते हैं वही श्रेष्ठ स्नान कहाता है जैसा **पद्मपुराण** पष्ठउत्तरखंड अध्याय २७ में कहा है।

अगाधे विपले सिद्धे सत्तीर्थे च शुचौ हृदि।
स्नातव्यं मनसा युक्तैः स्नानं तत्परमं स्मृतम्॥

महाभारत वनपर्व अध्याय १६६ में कहा है कि जज्ञनों के संग और मीठी वाणी से जिन्होंने अपनी आत्माको पवित्र किया है उन्हीं को पवित्र कहते हैं महात्मा व्यास, पर्वत और नारद मुनि जब पांडवोंसे मिलने गये तब उन्होंने कहा है कि हे युधिष्ठिर आप लोग अपने मनको शान्त कीजिये मनको पवित्र करके शुद्ध होकर तीर्थोंको जाइये मुनियों ने कहा है कि शरीर शुद्ध होने ही से व्रत होसकता है ब्राह्मणोंने कहा है कि मन पवित्र होने से बुद्धि शुद्ध होती है मन ही पवित्रताका कारण है आप लोग अपनी बुद्धिको पवित्र और सबको मित्र बना कर तीर्थोंको जाइये जब आप लोग शरीर के नियम और व्रतों से शुद्ध होंगे और पूर्वोक्त देवव्रत धारण करेंगे तब तीर्थोंका यथायोग्य फल पावेंगे॥

युधिष्ठिरयमौभीम मनसा कुरुताऽर्जवम्
मनसा कृतशौचो वै शुद्धास्तीर्थानि यास्यथ। २०।
शरीरनियमं प्राहुर्ब्राह्मणा मानुषं व्रतम्।
मनो विशुद्धां बुद्धिञ्च दैवमाहुर्व्रतं द्विजाः। २१।
मनो ह्यदुष्टं शौचाय पर्याप्तं वै नराधिप।
मैत्रीं बुद्धिं समास्थाय शुद्धास्तीर्थेषुवैनराः॥
ते यूयं मानसैः शुद्धाः शरीरनियमव्रतैः।
देवं व्रतं समास्थाय यथोक्तं फलमाप्स्यथ॥ २३॥

देवीभागवत स्कन्द ४ अध्याय १८ में प्रह्लादजी ने च्यवन ऋषि से कहा है कि जिनके मन वाणी देह शुद्ध हैं उन्हें तीर्थ पद पद पर हैं। मलिन चित्तों को गङ्गा भी अपावन की कटादि देशों से अधिक है जो प्रथम मन शुद्ध है तो जीवात्मा पापरहित होता है उसे सब तीर्थ भी पवित्र करते हैं नहीं तो गंगा

के तीर सब कहीं नगर, व्रज अहीरों के ग्राम बसते हैं किरातों के गृह और हूण, वंग, खस, मलेच्छादिकों के स्थान होते हैं और सर्वदा गंगा जल ही पान करते हैं स्वच्छता पूर्वक त्रिकाल स्नान करने पर एक भी विशुद्धात्मा नहीं होता जिनका चित्त विषय वासना से हत हो गया है उन्हें तीर्थ क्या करें सब का कारण मन ही है इस लिये प्रथम उसको शुद्ध करना चाहिये तीर्थ में वास करके औरों को छला तो क्या शुद्ध हो सकता है इस लिये प्रथम मन शुद्ध फिर द्रव्य शुद्ध तदन्तर शौचादि शुद्ध करके तीर्थ यात्रा अवश्य करनी चाहिये वरन् जाना व्यर्थ है।

प्रथमं मनसः शुद्धिः कर्त्तव्या शुभमिच्छता ।
शुद्धे मनसि द्रव्यस्य शुद्धिर्भवति नान्यथा ॥ २७ ॥

क्योंकि यदि किसी के कहने अथवा देखने से तीर्थ यात्रा को गये और राग, द्वेष, काम, क्रोध युक्त ही गृह को लौट आये तो बतलाइये क्या फल मिला इस लिये तीर्थ यात्रा करने पर देह से काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णा, द्वेष, राग, मद, निन्दा, ईर्षा, अक्षमा और अशान्ति ये न गई तो केवल काम ही काम हुआ फिर फल कहां। जैसाकि **देवी भागवत** स्कन्द ३ अध्याय ८ में कहा है।

इसी हेतु नरसिंह उपपुराण अध्याय ६७ में मनु महाराज ने भरद्वाज ऋषि को उपदेश किया है कि मन का निर्मल रखना रागादिकों में व्याकुल न होना, सत्य बोलना, सब के ऊपर दया करना, इन्द्रियों को जीतना, गुरु माता पिता की सेवा करना यह मानुषी तीर्थ विशेष लाभदायक हैं।

वामन पुराण अध्याय ४३ में लिखा है जिन का अनन्तभाव वाला चित्त आत्मा में लगा हुआ है उनको सब तीर्थों और आश्रमों से क्या प्रयोजन।

किं तेषां सकलैस्तीर्थैराश्रमैर्वा प्रयोजनम् ।
येषां चानंतकं चित्तमात्मन्येव व्यवस्थितम् ॥ २४ ॥

अर्थात् विना मन के शुद्धि किये किसी नदी आदि में स्नान किये से पापों की निवृत नहीं होती इसी हेतु गरुड़ पुराण अध्याय १७ श्लोक ५९ में लिखा है कि जिसके सत्संग और विवेक यह दो निर्मल नेत्र नहीं हैं वह **अन्धा और कुमार्ग में जाने वाला है** जैसा कि—

सत्सङ्गश्च विवेकश्च निर्मलंनयनद्वयम् ।

श्रीमहाराज इसी प्रकार पुराणों में अनेकान वचन मिलते हैं इस पर भी इसके विपरीत उन्हीं पुराणों में तीर्थों के दर्शन और स्नानादि की महान् महिमा लिख दी है जिन को सुन २ कर संसारी जन भेड़िया धसान की भांति विना इन बातों को विचारे यम, नियम से रहित टीड़ी दल के समान एक विशेष तिथि पर काशी, मथुरा, प्रयाग, बद्रीनाथ, केदारनाथ, द्वारिका, जगन्नाथ, रामेश्वर, पंचवटी, चित्रकूट, गोकुल, अयोध्या, नैमिषारण्य, हरिद्वार, गंगोत्री, यमुनोत्री, नगरकोट, कुरुक्षेत्र, पुष्कर इत्यादि स्थानों के दर्शन कर गंगा, यमुना, गंडकी और नर्वदा इत्यादि में डुबकी लगा कर अपने मनोरथ की सिद्धि समझते हैं जैसा कि लिखा है आप भी संक्षेप से सुन लीजिये ।

श्रीमान् पण्डितजी ने कहा कि आज यहां ही विश्राम दीजिये ।

सेठजी—बहुत अच्छा जो आज्ञा मैं यहां ही समाप्त करता हूं ओ३म् शम् ।

सर्व सज्जनों ने चलने की तय्यारी की ।

सेठजी ने सर्व महाशयों को नमस्ते की ।

पण्डितजी ने आयुष्मान कहा और चल दिये ।

अन्य महाशयों ने यथा योग्य की ।

सेठजी अपने गृह में गये ।

इति द्वादश परिच्छेदः ।

त्रयोदश परिच्छेदः

सेठजी ने समय पर अनेक सज्जनों सहित श्रीमान् पण्डितजी को आने देख उठ कर दोनों हाथ जोड़ नमस्ते कह कर कहा कि आइये पधारिये विराजमान हूजिये ।

पंडितजी व अन्य सभ्य गणों ने यथा योग्य कहा और सब अपने २ स्थानों पर जा बैठे ।

सेठजी ने कहा देखिये श्रीमान् ।

मत्स्यपुराण अध्याय १०७ में लिखा है कि जो पुरुष अज्ञान से तीर्थ यात्रा करता है वह सब कामनाओं से सम्पन्न होके स्वर्ग लोक में प्राप्त होता है और क्षीण पुन्य होके धन धान्य से युक्त हुए स्थान को प्राप्त होता है ॥

अज्ञानेन तुयस्येह तीर्थयात्रादिकं भवेत् ।
सर्वकाम समृद्धेतु स्वर्ग लोके महीयते ॥
स्थानञ्जलभते नित्यंधनधान्यसमाकुलम् ॥ १६ ॥

वामनपुराण अध्याय ३४ में लिखा है कि तीर्थों का स्मर्ण मनुष्यों को पवित्र कर देता है और तीर्थों का दर्शन पापों का नाश करता है तीर्थ के स्नान से पापी को भी मुक्ति होती है जैसा कि—

तीर्थानां स्मरणं पुण्यं दर्शनं पापनाशनम् ।
स्नानं पुण्यं करं प्रोक्तमपि दुष्कृतकर्मणः ॥

हरिद्वार ।

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय २१ में महादेवजी ने कहा है कि एक समय मैं भगवान् के स्थान हरिद्वार को गया तो उस तीर्थ के प्रभाव से मैं विष्णु के रूप के तुल्य हो गया ॥ ११ ॥

एकदा केशवस्थाने हरिद्वारे ह्यहंगतः ।
तस्मात्तीर्थप्रभावाच्च जातोहं विष्णुरूपवान् ॥ ११ ॥

और भी मनुष्यों में श्रेष्ठ जो जाते हैं वे निरोग रहते हैं वे नर नारी सब चार भुजा वाले भगवान् के दर्शन ही से सब वैकुण्ठ को जाते हैं हम को भी यह सुन्दर हरिद्वार तीर्थ सब से अधिक है ॥ २२, २३ ॥

येगच्छन्ति नरश्रेष्ठास्तेवैयांतिह्यनामयम् ।
चतुर्भुजास्तुते लोकाः नरानार्यश्च सर्वशः ॥ २२ ॥

वैकुंठं यांतिते सर्वे हरेर्दर्शनमात्रतः ।
ममाप्यधिक तीर्थंतु हरिद्वार सुशोभनम् ॥ २३ ॥

जो धर्म अर्थ काम मोक्ष का देने वाला है गऊ, ब्राह्मण और पिता के मारने आदि के बहुत से पाप भगवान के दर्शन ही मात्र से नाश को प्राप्त हो जाते हैं ॥ २६, २७, २८ ॥

गोहंताब्रह्महांचैव येचान्ये पितृघातकाः ।
एवं विधानि पापानि बहून्यापि च वैद्विज ।
विलयं यान्ति सर्वाणि हरेर्दर्शनमात्रतः ॥

प्रयाग माहात्म्य ।

सप्तम क्रिया योगसार अध्याय ४ में कहा है कि कोटि ब्रह्माण्ड के मध्य में जितने तीर्थ हैं वे सब प्रयाग के बराबर नहीं ।

कोटि ब्रह्माण्डमध्येषु यानि तीर्थानि वैमुने ।
प्रयान्ति तानि सर्वाणि प्रयाग प्रतिमान्तुकिम् ॥

जो जन मकर के सूर्य माघ मास में यहां स्नान करते हैं तिनका आगमन फिर विष्णु लोक से नहीं होता ॥ ६ ॥

हजार करोड़ गौवों का दान, अश्वमेध इत्यादि यज्ञ, सुमेरु पर्वत के समान सोने का दान तथा और भी दान कुरुक्षेत्र, पुष्कर प्रभास और गयाजी में हवन कर ब्राह्मणों को देने से जो फल पण्डितों को मिलता है तिससे करोड़ गुणा फल माघ में प्रयाग में स्नान करने से मिलता है तिस से सब तीर्थों में प्रयाग श्रेष्ठ है ।

गवांकोटि सहस्राणि वाजिमेध मुखाध्वराः ।
मेरुतुल्य सुवर्णानिदानान्यन्यानिवद्विज ॥ ७ ॥

पद्मपुराण षष्ठ उत्तर खण्ड अध्याय २४ में लिखा है कि इस प्रकार का तीर्थ तीनों लोकों में न हुआ है न होगा ग्रहों में जैसे सूर्य और नक्षत्रों में जैसे चन्द्रमा श्रेष्ठ है । उसी भांति तीर्थों में उत्तम प्रयागजी हैं प्रातःकाल में जो

प्रयागजी में स्नान करता है वह महापाप से छूट परमपद को प्राप्त होता है दारिद्र के अभाव की इच्छा करने वाले को वहां यथा शक्ति कुछ देना भी चाहिये ३, ४, ५,॥ अध्याय ८१ में लिखा है कि अन्य स्थानों में जो दश वर्ष में तपस्या का फल मिलता है वह यहां एक दिन में प्राप्त होता है और अध्याय १२९ में लोमश मुनि ने कहा है कि इस प्रयाग में बिना ज्ञान के सब प्राणी मुक्ति को प्राप्त हो गये हैं यहां ही प्रजापति ने महायज्ञ को कर प्रजा रचने की शक्ति को प्राप्त कर सृष्टि को रचा था और स्त्री की कामना करने वाले नारायणजी ने स्नान के प्रभाव से अमृत मथन कर लक्ष्मीजी को प्राप्त किया था और इसी स्थान पर छः माह स्नान कर महादेवजी ने तीन बाण से त्रिपुरासुर को मार डाला था।

मत्स्यपुराण अध्याय १०६ में लिखा है कि विश्वास घात करके मार डालने वाला पुरुष तीन काल स्नान और भिक्षा कर भोजन करने से तीन माह में निस्संदेह पापों से छूट जाता है।

विश्रम्भ घातकानान्तु प्रयागे शृणुमत् फलम्।
त्रिकालमेव स्नायीत आहारं भैक्ष्य माचरेत्॥
त्रिभिर्मासैः समुच्येत् प्रयागेतु न संशयः॥

वाराहपुराण उत्तरार्द्ध अध्याय १२८ में लिखा है कि त्रिवेणी क्षेत्र पृथिवी मण्डल में सब तीर्थों से उत्तम है जिस में पृथिवी मण्डल के सब देवता और तीर्थों का समाज होता है यहां स्नान करने से मरके मुक्ति होती है इसको तीर्थराज नाम है॥ ८९॥

यत्राप्लुतादिवंयान्ति मृतामुक्तिं प्रयान्तिच।
तीर्थराज इतिख्यातं तत्तीर्थंकेशवप्रियम्॥ ८९॥

इतिहास

प्राचीन समय में समाधिनाम एक वैश्य धनवान और देवताओं अतिथियों की सेवा करने वाले थे उनकी पद्मावती नाम पतिव्रता स्त्री जो शीलादि गुणों से युक्त थी। वह कालान्तर में व्यौपार को गये इधर स्त्री सखियों सहित स्नान

को गई वहां धनुर्ध्वज नाम एक पापीने उस स्त्रीको देख उससे कहा कि तुमको हमारे साथ आनन्द करना चाहिए तब सखियों ने कहा कि यह पतिव्रता है इस की इच्छा करना मूर्खता है परन्तु उसने न माना फिर सखियोंसे कहा कि जिस प्रकार यह मिल सके वह उपाय बतलाओ मैं तुम्हारी शरण हूं तब सखियोंने उत्तर दिया कि यदि तू इस स्त्रीकी इच्छा करता है तो शीघ्र गङ्गा जमुना के संगम पर देहका त्याग कर इतना कह यह सब घरको गई इधर हजार हत्या करने वाला चाण्डाल मोहके कारण गङ्गा जमुना के जल में उसका पूजन कर प्राण छोड़ता हुआ जिससे वह उसी दिन उस स्त्री के पतिके समान हो गया और वह चांडाल ब्राह्मण उस स्त्री के घरको आया उधर वह प्रणधि नाम वैश्य व्योपार से वापिस आकर गृहको गया पतिव्रताने दोनों को एक समान देख चिन्ताकी कि मैं किस की स्त्री हूं और मेरा कौन स्वामी है इसके लिये भगवान् की प्रार्थनाकी तब भगवानने कहा कि हे सुन्दर स्त्री जिसप्रकार अनन्त रूप वाली लक्ष्मी मेरे साथ क्रीड़ा करती है उसीभांति तुम भी दोनोंके संग सदैव सुख भोगो। पद्मसप्तम क्रियायोग अध्याय ४॥

अनन्तरूपिणी लक्ष्मीर्यथाक्रीडे मयासहा।
तथात्वमपिसुश्रोणि भुंक्ष्वताभ्यां सुखंसदा॥

यह सुन पद्मावतीने कहा कि मनुष्य समाजमें जिस स्त्री के दो पति होते हैं उसकी प्रशंसा नहीं होती इसलिये लज्जारूपी समुद्र के कल्लोलमें डूबती हुई का आप उद्धार कीजिये। तब भगवान्ने कहा कि यदि तुम अपयश से डरती हो तो इन दोनों समेत मेरे पुरको प्राप्त हो। हे पवित्र अंगवाली स्त्री तुम भ्रमको छोड़ दो यह दोनों तुम्हारे पति हैं। इसलिये सदैव एकभावसे सेवा करो।

भ्रमं जहीहि चार्वंगिद्वावेतौहि पतीतव।
एकभावेनसुश्रोणि कुरुसेवां तयोः सदा॥

तुम्हारा स्वामी प्रणिधि मेरा भक्त था वही अपने सुखके लिये दो प्रकार का हुआ है।

तदन्तर भगवान् की आज्ञा से विमान आया जिस पर पद्मावती दोनों पतियों को साथ लेकर बैकुण्ठको गई। मार्ग में उधर विष्णु दूत एक मनुष्यको स्त्री समेत विमान में बिठलाकर लिये जाते थे तब पद्मावती ने पूछा कि आप कौन हैं किस पुण्यके फलसे इसको आप लिये जाते हो उसके व्रतको सुनाइये तब

दूतोंने कहा कि यह बृहद्ध्वज नाम राक्षस वनका रहने वाला बड़ा पराक्रमी **पराई स्त्री, पराई द्रव्यका हरनेवाला गायोंके मांसकाखानेवाला** निष्ठुर वचन कहने वाला, देवोंकी निन्दा में मस्त अर्थात् शुभकर्म इसने स्वप्न में भी नहीं किये पराई स्त्रियोंके हरणके लिये आकाशमें घूमा करता था एक समय भीमकेश राजाकी कोशिनी नामी स्त्री को देख उससे कहा कि मैं तेरे आलिङ्गन को आया हूं इतना सुन स्त्रीने उससे आलिंगन किया फिर प्रसन्न चित्त पति पत्नी भावको प्राप्त हो बड़े वेगवाले रथमें बैठ आकाश मार्ग में ने थोड़ी देरके पश्चात् राक्षसने कहा तुम्हारे स्वामी के राज्य से गंगासागर में आगये। जिसको देख स्त्री के प्राण निकल गये फिर राक्षस ने रो २ कर प्राणों को छोड़ दिया। अब भगवान् की आज्ञासे दोनोंके पाप नाश होगये इसलिये दोनों को बैकुण्ठ लिये जाते हैं क्योंकि जल, स्थल, आकाशमें गङ्गासागर के संगम में देह छोड़कर पापी भी परमगति को पाते हैं इतना कह वह दूत उन दोनों को विष्णुलोक ले गये। इधर पद्मावती दोनों पतियों समेत विष्णुजी की सारूप्यताको प्राप्त हुई।

मत्स्यपुराण अध्याय १८० में पार्वती जी के पूँछने पर शिवजी ने कहा है कि हे प्रिये जिन तीर्थों में मेरी स्थिति सुनी जाती है वह सब तीर्थ इस अविमुक्त तीर्थके चरणों में नित्यही स्थिति रहते हैं यह परम प्रसिद्ध परम गति का देने वाला है इसमें सब दान अक्षय कारी होते हैं हजारों जन्मों का संचय किया पाप सब नष्ट होजाता है जैसे अग्नि में रुई भस्म हो जाती है ब्राह्मण आदि वर्णशङ्कर पातकी जीव कीट पतंग मृग पक्षी भी इस तीर्थ में मरे वह शिव लोक में जाता है। ब्राह्मणकी हत्या करने वाला भी पुरुष इस तीर्थ पर जाता है तो उस की ब्रह्महत्या दूर होजाती है ॥ १६ ॥ १७ ॥

अध्याय ८२ में लिखा है कि जो गति दान, तप, यज्ञ और ब्रह्म विद्या आदि से भी नहीं मिलती वह इस तीर्थ से प्राप्त होती है अनेक जाति वा चांडाल पापी तथा ब्रह्म हत्या वाले इन सब पुरुषों की परम औषधी यही है कि अविमुक्ति तीर्थ को प्राप्त होजावे और जो वहां शिवकी भक्तिकरके मरते हैं फिर वह जन्म नहीं लेते। ५५। ५७।

हे पारवती जैसे न मेरे समान कोई पुरुष है न तेरे समान कोई स्त्री है इसी प्रकार अविमुक्ति तीर्थ के समान कोई तीर्थ भी न है न होगा।३५। अध्याय १८१॥

अविमुक्त तीर्थ पर परमयोग परम गति और परम मोक्ष है इसी से इसके

समान कोई क्षेत्र नहीं है । २६ । यही स्थान मेरी ब्रह्म हत्या का दूर करने वाला है । पापी पुरुष को यहां की धूल परम पवित्र करदेती है कहां तक इसकी महिमा वर्णन करूं व्यभिचारिणी स्त्री भी यहां पर शरीर त्यागने से परम गति को प्राप्त होजाती है ॥२५॥ जो जन इस तीर्थ का सेवन नहीं करते वह तपोगुणसे युक्त हैं ।

शिवपुराण ज्ञानसंहता अध्याय ५० में कहा है कि मेरे बहुत कहने से क्या है इस तीर्थ के दर्शन की विष्णु और ब्रह्मा भी अपने पवित्र होनेकी कामना करते हैं । १५ ॥

तद्दर्शनंह्यहं विष्णुर्ब्रह्माचापि तथापुनः ।
कामयन्ति च तीर्थानि पावना यात्मनस्तदा १५ ॥

पण्डित, श्रोत्रिय, चाण्डाल, पतित, संन्यासी कोईभी हो यहां शरीर त्यागने से मुक्ति हो जाती है ।

पण्डितः श्रोत्रियोवापि चण्डालः पतितोऽथवा ।
संन्यासी वमृतः स्याद्वै सर्वे मोक्षमवाप्नुयुः ॥

पुरुषोत्तम तीर्थ ।

पद्मपुराण सप्तम क्रिया योग अध्याय १८ में लिखा है कि यहां चाण्डाल का छुवा अन्न ब्राह्मणों के ग्रहण योग्य होता है तिससे यहां पर साक्षात् विष्णुही है । ७ ॥ यहां स्वयं लक्ष्मी भोजन बनाती हैं यहां का भात देवताओं को भी दुर्लभ है भगवान् के भोजन से बचा हुआ अन्न जो भोजन करता है उसकी मुक्ति दुर्लभ नहीं है ।

हरिभुक्तावशिष्टं यत्पवित्रं भुविदुर्ल्लभम् ।
अन्नं येभुञ्जते लोकास्तेषां मुक्तिर्न दुर्ल्लभा ॥

जो चैत्रके महीने में वारुणी पर्व में जगन्नाथ के दर्शन करता है वह मरकर उनकी देहमें प्रवेश करता है ॥ ३४ ॥

चैत्रके मासि वारुण्यां यो जगन्नाथमीक्षते ।
समृतः प्रविशेद्देहं जगन्नाथस्य जैमिने ॥ ३४ ॥

इसीभांति जो दुर्भागा, सुभद्राजी के दर्शन करती है वह सुभागा होती है काक वन्ध्या निश्चय पुत्रको पाती है ॥ ४२ ॥

दुर्भगा काकवन्ध्यावा सुभद्रायां प्रपश्यति ॥
सा स्वामि सुभगा नारी बहपत्या भवेत्खलु ॥ ४२

कहां तक कहैं रोगी रोगसे, पुत्र हीन पुत्र, विद्यार्थी विद्या धनकी इच्छा वाला धन स्त्री की इच्छा वाला स्त्रियों और मोक्षकी इच्छा वाला मोक्षको पाता है ॥४३॥ इसीभांति राज्य अर्थात् सब कुछ मिलता है यह पुरुषोत्तम तीर्थ सब. तीर्थों में श्रेष्ठ है।

मथुरा।

वाराहपुराण उत्तरार्द्ध अध्याय १४६ में वाराह भगवानने कहा है कि हम उस तीर्थका महात्म वर्णन करते हैं जिसके तुल्य स्वर्ग मृत्यु और पाताल तीनों लोकों में दूसरा तीर्थ नहीं **जिसको मथुरा पुरी कहते हैं** जहां हमारा निवास स्थान है और क्षेत्र तो हमारे निवास करने से पवित्र हुए और मथुरा जन्म लेनेसे अति पवित्र है जो २ जीव मथुरा में वास करते हैं वे सब शरीर त्याग करने पर मुक्ति पाते हैं माघकी अमावास्याका जो फल श्री त्रिवेणी के स्नान से होता है वह फल मथुरा में नित्य २ होता हैं. एक हजार वर्ष काशीवास से जो फल मिलता हैं वह मथुरा स्नानमात्र से ही होजाता है कार्त्तिक पूर्णमासी को पुष्कर स्नानसे जो फल मिलता हैं वह मथुराजीके स्नान से मिलता है हम कहां तक कहैं यह संसार हमारी माया से मोहित भया भ्रमता है और मथुरा मण्डल में नहीं आता जिसमें सब पापोंसे मुक्ति हो उत्तम गतिको पाता है स्नान करना तो वहां उत्तम ही है जो कहीं किसी भूमि में. कोई मथुरा इस तीन अक्षरके शब्द को उच्चारण करते हैं वह पापों से मुक्ति होजाते हैं। और अध्याय १५४में लिखा है कि मथुरा मण्डलकी परिक्रमा करने से ब्राह्मणका वध करने वाला, मद्यपान करने वाला, चोर, व्रतका खण्डन करने वाला, अगम्य स्त्री के साथ संगम करने वाला क्षेत्र का हरने वाला सब पापों से मुक्ति हो उत्तम गतिको पाता है।

शूकर क्षेत्र ।

वाराह पुराण उत्तरार्द्ध अध्याय १३१ में शूकर क्षेत्र के विषयमें लिखा है त्रेता के अन्त और द्वापरके आदिमें कपिल नगर में ब्रह्मदत्त नाम राजाके सोमदत्त नाम सुशील और धर्मात्मा पुत्र था जो पिताकी आज्ञा पाकर पितृकर्म अर्थ आखेटके लिये वनको गया जहां अनेक जन्तु होनेपर कोई हाथ न आया तब वह इधर उधर घूमने लगा इतने में एक शृगाली आई उसे देख उसने बाण चलाया जिसके लगते ही वह दुःखी हो भागी गङ्गाजी में जाकर जल पिया और प्राण छूट गया और सोमदत्त क्षुधा, तृषा करके पीड़ित उसी वनमें एक वृक्षके निकट पहुँचा क्या देखता कि एक वटकी शाखापर एक गृद्ध सुख पूर्वक निवास कर रहा है उसको देख बाण मारा वह मरगया वह क्षेत्र के प्रभावसे कालिञ्जर के राजाका पुत्र और शृगाली अतिरूपवान कान्तिसेन नाम राजा की कन्या हुई-दोनों का विवाह होगया और बड़े प्रेम से रहने लगे। राजा वृद्ध अवस्था देख राज्य पुत्रको दे वन चला गया वह प्रजा पालन करने लगा जिसके पांच पुत्र हुए। एक दिन रानी ने राजा से कहा कि आप हमको यह वर दीजिये कि मैं मध्याह्न के समय एकान्त में जाकर सोया करूं और वहां कोई न आने पावे राजा ने स्वीकार कर लिया। रानी एकान्त में मध्याह्न के समय शयन करने लगी इस प्रकार ७७ वर्ष व्यतीत हो गये ७८ वें वर्ष में राजा ने एक दिन विचारा कि देखें यह मध्याह्न के समय क्या किया करती है, क्योंकि शास्त्रों और आचार्यों का यह मत नहीं है कि मध्याह्न के समय स्त्री एकान्त में शयन करे इस लिये छिप कर देखना चाहिये राजा मध्याह्न के समय उसके पलंग के नीचे छिप रहा तब रानी पलंग पर कह रही थी कि हे परमेश्वर मैंने पूर्व जन्म में कौनसा पाप किया जिसका फल मैं भोग रही हूं देखो मेरा पति भी मेरी दशा नहीं जानता, मेरा शिर फटा जाता है इस से तो मरना ही अच्छा अब मैं किस उपाय से शूकरक्षेत्र को जाऊं तो यह क्लेश निवृत्त हो। राजा ने सुन पलंग के नीचे से निकल कर कहा कि तुमने हम से नहीं कहा अब सब जाता रहेगा तब रानी ने कहा कि राज्य को पुत्र को देकर शूकर क्षेत्र को चलो राजा ने ऐसा ही किया। रानी समेत शूकरक्षेत्र में पहुँचे और कहा कि अब तो सब वृत्तान्त कह दो रानी ने कहा कि तीन दिन व्रत कर लो जब व्रत हो गया तो रानी ने कहा कि मैं पूर्वजन्म की शृगाली थी वहां ब्रह्मदत्त का पुत्र सोमदत्त आया जिसने एक तीर मस्तक में मारा जिसका

घाव इस समय आप देख लें महाराज इस तीर्थ के प्रभाव से मैं राजकुमारी हो आपकी पत्नी हुई इसी क्षेत्र में प्राण त्यागने के कारण हमको पूर्व स्मरण भी नहीं भूला यह सुन राजाको भी स्मरण होगया और कहने लगा कि मैं गृद्ध था इसी पेड़ पर रहता था। उसी सोमदत्तने बाण मारा प्राण निकलगया जिससे इसी तीर्थके प्रभाव से राज पुत्र और तुम्हारा पति हुआ। अब मैं तुम्हारे साथ प्राण त्याग करता हूं। हमारे दूत विमान लेकर पहुँच गये दोनों हमारा नाम स्मरण करते २ प्राण त्याग विमान में बैठ श्वेत द्वीप पहुँचे राजा के साथ जो और जन आये थे इस आश्चर्यको देख प्रेम श्रद्धायुक्त दान पुण्यकर अपने शरीरको त्याग विमानों द्वारा श्वेत-द्वीप में पहुँचे।

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय १११ में लिखा है पांच योजन के विस्तार युक्त भगवान मन्दिर शूकर क्षेत्र में जो गदहा भी जीव बसता है वह चार भुजा वाले भगवान के समान है॥ ६॥

पंचयोजन विस्तीर्णे शूकर हरि मन्दिरे।
यस्मिन्वसति यो जीवो गर्दभोऽपिचतुर्भुजः॥ ६॥

जो मनुष्य और जगह साठ हजार वर्ष तपस्या कर फल पाता है वह फल शूकर क्षेत्रमें आधे पहर में मिलता है।॥ ८॥

षष्टिवर्ष सहस्राणियोऽन्यत्र कुरुते तपः।
तत्फलंलभतेदेवि प्रहरार्द्धेन शूकरे॥ ८॥

काशी में दश गुण, वेणी में सौगुणा, गङ्गा सागर के सङ्गम में हजार गुणा और हर मन्दिर शूकर क्षेत्रमें अनन्त गुणा फल होता है॥ १०॥

काश्यां दशगुणं प्रोक्तं वेण्यां शतगुणं भवेत्।
सहस्र गुणितं प्रोक्तं गंगासागरसंगमे॥ १०॥

श्रीमान् इसके उपरांत अनेकान तीर्थों के महात्म पुराणों में लिखे हैं जिनका वर्णन करने के लिये बहुत समय चाहिये परन्तु पण्डितजी महाभारत वनपर्व अध्याय ८५ में पुलस्त ऋषि का वचन है कि सतयुग में सब तीर्थों में स्नान करने से जो पुण्य होता था त्रेता में पुष्कर, द्वापर में कुरुक्षेत्र और कलियुग में तो गङ्गा ही प्रसिद्ध है जैसा कि—

सर्वं कृतयुगे पुण्यं त्रैताया पुष्करं स्मृतम् ॥
द्वापरेऽपि कुरुक्षेत्रं गङ्गा कलियुगे स्मृता ॥

इस लिये अब मैं अन्य तीर्थों के महात्म को छोड़ गङ्गा महात्म और उत्पत्ति को फल वर्णन करूंगा क्योंकि आज मुझको एक आवश्यक कार्य्य के लिये अपने बड़े साहिब के यहां जाना है आशा है आप आज्ञा देंगे।

श्रीमान् पंडितजी और अन्य महाशयों ने प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर कहा कि बहुत अच्छा आज यहां ही समाप्त कर दीजिये।

सेठजी बहुत अच्छा ओम् शम्।

सर्व सज्जन महाशयों ने चलने की तैय्यारी की।

सेठजी ने सब सज्जनों को हाथ जोड़ यथा योग्य कहा।

पण्डितजी ने आशीर्वाद दिया और अन्य महाशय यथा योग्य कह कर चल दिये।

सेठजी भोजन कर साहब के यहां गये।

इति त्रयोदश परिच्छेदः।

अथ चतुर्दश परिच्छेदः।

आर्य्यसेठ श्रीमान् पण्डितजी नमस्ते आइये विराजमान हूजिये।

श्रीपण्डितजी आयुष्मान् कह विराजमान हुये इतने में अन्य महाशय गण आने गये और यथा योग्य कह कर विराजने गये।

सेठजी अब मैं प्रथम गंगा माहात्म्य सुनाता हूं सुनिये।

गंगा माहात्म्य।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण प्रकृतिखण्ड अध्याय १० में कहा है जो मनुष्य गंगा २ सैकड़ों योजन से भी कहते हैं वह सब पापों से छूट कर विष्णु लोक को जाते हैं।

गंगागंगेति योब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं सगच्छति ॥ ७० ॥

पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय ८१ में लिखा है। तपस्या, ब्रह्मचर्य्य, यज्ञ और दान से उस गति को नहीं प्राप्त होता जिसको गंगा का सेवन कर प्राप्त होता है ॥ २५ ॥

तपस्या ब्रह्मचर्येण यज्ञैस्त्यागेन वापुनः ।
गतिंतानं लभेज्जंतुर्गंगासेव्यथां लभेत् ॥ २५ ॥

जैसे उदय के समय में सूर्यनारायण तीव्र अंधकार को दूर कर शोभित होते हैं वैसे ही गङ्गाजी के जल में स्नान करने वाला पापों को दूर कर शोभित होता है ॥ २७ ॥ ब्राह्मण और गुरु का मारने वाला, मदिरा पीने हारा, बालकों का मारने वाला सब पापों से छूट शीघ्र स्वर्ग को जाता है ॥ ३७ ॥

ब्रह्महाचैव गोघ्नोवा सुरापीबालघातकः ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो दिवंयाति चसत्वरम् ॥ ३७ ॥

मत्स्य पुराण अध्याय १०३ में लिखा है कि हजार योजन से श्रीगंगाजी के स्मरण करने से पाप क्षय हो जाते हैं और, उनके नामोच्चारण से दुष्कृत कर्म करने वाले भी परमगति को प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥

योजनानां सहस्रेषु गङ्गायाः स्मरणान्नरः ।
अपिदुष्कृत कर्मातु लभते परमाङ्गतिम् ॥

कीर्तन से पाप नष्ट होते हैं दर्शन करने से शुभ मंगलों को देखता है स्नान और जल पान से अपने समेत सात पीढ़ियों को पवित्र कर देता है ॥१४॥

कीर्तनान्मुच्यते पापाद् दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति ।
अवगाह्य चपीत्वातु पुनात्या सप्तमं कुलम् ॥

श्रीगङ्गाजी इस पृथ्वी पर मनुष्यों का, पाताल लोक में नागों का और स्वर्ग में देवताओं का उद्धार करती हैं यह त्रिपथगामिनी गङ्गाजी कहाती हैं ॥ ५ ॥ अध्याय १०४ ॥

क्षितौतारयते मर्त्यान्नागांस्तारयतेऽप्यधः ।
दिवितारयतेंदेवांस्तेन त्रिपथगास्मृता ॥ ५१ ॥

प्राणियों की जितनी हड्डियां गङ्गाजी में पहुँच जाती हैं उतने हजार वर्षों तक प्राणी स्वर्ग में वास करते हैं ॥ ५२ ॥

यावदस्थीनि गंगायां तिष्ठन्ति शरीरिणः ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥

यह गङ्गा सब तीर्थों में उत्तम तीर्थ है नदियों में उत्तम नदी और महा पातकवाले सम्पूर्ण प्राणियों को मोक्ष देने वाली है ॥५३॥

तीर्थानान्तु परंतीर्थं नदीनांतु महानदी ।
मोक्षदा सर्व भूतानां महापातकिनामपि ॥ ५३ ॥

विष्णु पुराण अं० ४ अध्याय ४ में लिखा है कि गङ्गा जलमें ही शक्ति है जो केवल स्नान, पान और मार्जन करने वाले ही पुरुषों को तारे किन्तु सैकड़ों हजारों वर्षों के सड़े, गले, बार, नोह, हाड़, राख इत्यादि पर जल पड़ने से उस प्राणी को भी तार दें ॥ १५ ॥

पद्मपुराण सप्तम क्रिया योगसार अध्याय ८ में लिखा है कि देहधारियों के जितने समय तक गङ्गाजी में हाड़ स्थित रहते हैं उतने ही हजार कल्प वह विष्णुलोक में प्राप्त होता है ॥ २५ ॥

तिष्ठंत्यस्थीनि गङ्गायां यावत्कालं शरीरिणः ।
तावत्कल्पसहस्राणि विष्णुलोके महीयते ॥ २५ ॥

जिसकी राख, हाड़, नो और बाल गङ्गा में डूबते हैं वह बुद्धिमान् विष्णुजी के लोक में वास करता है ॥ २६ ॥

यस्यमज्जन्ति गंगायां भस्मास्थीनि नखानिच ।
शिरोरुहाण्यपि प्राज्ञः सविष्णोर्भुवनं वसेत् ॥ २६ ॥

गरुड़पुराण अध्याय १० श्लोक ८ में लिखा है जो मनुष्य प्रथम अवस्था में पाप करके मर गये हैं और उनकी हड्डियां गङ्गामें पड़ी हैं वह स्वर्गको जाते हैं।

यावदस्थि मनुष्यस्य गंगातोयेषु तिष्ठति ।
तावद्वर्ष सहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ८० ॥

॥ इतिहास ॥

इस पृथ्वी पर सोमवंश में मनोभद्र नाम सब धर्मों का जानने वाला एक राजा हुआ जिस की प्रिया हेमप्रभा नाम पतिव्रता स्त्री थी। एक दिन राजा ने मंत्रियों को सभा में बुला कर कहा कि मैं पृथिवी की रक्षा करता हूं पुत्र आदि भी हैं शत्रुओं को भी नाश किया है अपने गोत्र और दान से ब्राह्मणों की रक्षा भी की है। सज्जन और पुत्र वलवाहन समेत सब देवता भी प्रसन्न किये हैं परन्तु तो भी वृद्धावस्था में मेरा बल हर लिया गया है इस कारण मैं कर्म नहीं करता सामर्थ्य हीन पुरुष को लक्ष्मी शोभित नहीं होती और न आभूषण सहित स्त्री अच्छी लगती है इस कारण अब मैं इस राज्य को पुत्रों को देना चाहता हूं इस में आप सब की सम्मति क्या है इस पर सबने कहा कि यह आप का विचार ठीक है राजा ने वीरभद्र यशोभद्र को बुलाकर अपना राज्य दे दिया इसी समय एक गृध्र स्त्री सहित सभा में आकर बैठा तब राजा ने पूछा आप का आगमन किस हेतु हुआ है तब गृध्र बोला कि इन दोनों के वैभव को देखने आया हूं पूर्व जन्म में इन दोनों को देखा था। तब राजा ने कहा कि आपने इनके पूर्व जन्म का वृत्तान्त कैसे जाना गृध्र ने कहा कि द्वापर युग में यह सत्यघोष नाम शूद्र के गद और सगर यह दो पुत्र थे यह दोनों एक साथ मर गये। यमदूत बांध कर धर्मराज के सन्मुख ले गये धर्मराज ने चित्रगुप्त से पूछा कि इनके सब कर्मों का वर्णन कीजिये चित्रगुप्त ने कहा कि यह दोनों सत्य पुण्य कारी व्रतमें बड़े अंतःकरण वाले हैं कुछ बुरे कर्म किये हैं जो सब कर्म के नाश करने वाले हो गये हैं उसी के कारण यह दोनों नरक जायेंगे अर्थात् इन्होंने ब्राह्मणों को दान नहीं दिया धर्मराज की आज्ञानुसार वह नरक को गये उसी दिन स्त्री समेत मुझको भी यमदूत ले गये। अब मेरे कर्मों का वृत्तान्त सुनिये मैं पूर्व समय में सौराष्ट्र देश का महा कुलीन वेदादि का जानने वाला सर्वग नाम ब्राह्मण हूं और यह शस्विनी नाम पतिव्रता स्त्री है विद्या धन और अवस्था के मद से मतवाला हो युवावस्था में माता पिता की मन से सेवा नहीं की और निरादर किया। हे राजन्! इसी अपराध से स्त्री समेत उपरोक्त पापियों में छोड़ दिया गया और उन के साथ हजार करोड़ युग और सौ करोड़ युग नरक में महान् दुःखों को सहा फिर अन्त को स्त्री समेत मैं मरे हुओं के मांस खाने वाला गृध्र पक्षी के कुल में उत्पन्न हुआ और यह टीड़ियों में। एक समय बड़ी आंधी

आई जिससे यह दोनों उड़ कर निर्मल गङ्गा जल में गिर पड़े और गिरते ही मर गये और सब पाप जाते रहे तदन्तर उन के लेने को विमान लेकर दूत आये जिस में बैठ वह विष्णुपुर को गये यह सुन राजा पुत्र और स्त्री समेत गङ्गाजी की सेवा में तत्पर हो गये। अध्याय ७ में लिखा है कि जिसने गङ्गा में स्नान नहीं किया उसका मुख देख कर शीघ्र सूर्य के दर्शन करने चाहियें और ऐसे मनुष्यों का अन्न भी न ग्रहण करना चाहिए गङ्गाजी में स्नान करने वालों को पाप उनकी देही को छोड़ कर गङ्गा न स्नान करने वालों की देह में चले जाते हैं और जो कुएं के जल में भी गङ्गा यह नाम कह स्नान करता है वह गङ्गा स्नान के फल को पाता है जो गंगाजी की सरसों बराबर बालु को मृत्यु समय में पाता है वह परम पद पाता है। पद्म सप्तम क्रिया योगसार अध्याय ३, ७ से॥

त्रैतायुग में धर्मस्व नाम ब्राह्मण जो धर्मात्मा शांति शील आदि गुणों से परिपूर्ण थे गङ्गा स्नान कर घर चलने की तय्यारी की। उस समय दलकर बनियां सैकड़ों सेवकों सहित आया जिस में कालकल्प नाम ब्राह्मण भी था। उसने एक बैल को जो मार्ग के परिश्रम से थक गया था अति निर्दई हो कर मारा उसने क्रोध में आकर कालकल्प को सींगों से मार डाला इस को देख धर्मस्वजी वहां गये और उसको गङ्गा जलकी बूंदों से सींचा परन्तु वह प्राणरहित हो गया था इस कारण चैतन्य नहीं हुआ इतने में यमदूत वहां आये दोनों में वार्तालाप होने लगा।

यमदूत ने कहा कि यह दुराचारी पापी, हजार हत्या करने वाला कृतघ्नी, गऊ और मित्रों का मारने वाला तथा बुरे आशय वाला है इसने सुमेर पर्वत के समान सोना चुराया है हजारों बरन् करोड़ों हत्या और स्त्री हत्या की हैं इसने माता से गमन किया है और प्रति दिन गऊ मांस खाया है और अन्यों के घरों को जलाया है सभा में पराई निन्दा की है विधवाओं के गर्भों को गिराया है, अतिथियों को तलवारों से मारा है इस लिये इस महापापी को यमराज के पास जाने दो।

अयं पापी दुराचारी ब्रह्महत्यासहस्रकृत्।
कृतघ्नश्चैव गोघ्नश्च मित्रघ्नश्च दुराशयः॥ ५७॥
मेरुप्रमाणहेमानि हृतानि सुबहूनि च।
परदाराहृता नित्यं मनेनातिदुरात्मना॥ ५८॥

कोटिकोटि सहस्राणि जंतूनां विष्णुकिंकराः ।
कृताश्च बहुधा हत्याः स्त्रीहत्या च तथैव च ॥ ५६ ॥
अयं न्यासापहरणं स्वमातृगमनं तथा ।
गोमांसभक्षणं चैव चकार प्रतिवासरम् ॥ ६० ॥
गृहमायांतमतिथिं धनलोभेन सत्तम ।
अहनन्निशितैः खड्गैर्निशाया यवनोपमः ॥ ६२ ॥

विष्णुदूत यह तो आप ने सत्य कहा परन्तु गंगाजल के सींचन से यह पापों से छूट गया क्योंकि देह धारियों के पाप जब तक ही रहते हैं जब तक गङ्गाजल की बालू स्पर्श नहीं होती। अन्त को विष्णुदूत विष्णुलोक को ले गये अर्थात् गंगाजी के जल के सींचने के प्रभाव से अत्यन्त पापी कालकरब भी हरि के मन्दिर में सालोक्य प्राप्त होता हुआ ॥ ६६, ६८, ९४ ॥ यह देव धर्मस्व ब्राह्मण गंगा तट पर गया और स्तुति की जिसको गङ्गा ने वर दिया बहुत काल के पीछे मरने पर उत्तम पद को पाया।

श्रीमान गङ्गा की महिमा कहां तक आप को सुनाऊं जब विष्णु, शिव और ब्रह्माजी भी उनका सेवन करते हैं। तो फिर कौन ऐसा है जो उन का सेवन न करे जैसा कि—शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ४८ में लिखा है।

गंगां च सेवते विष्णुर्गंगां च सेवते हरः ।
गंगां च सेवते ब्रह्मा को वा गंगां न सेवते ॥

इस के अतिरिक्त गङ्गा के समान कुछ कम यमुना जी के गुण गाये हैं वेत्रमती के विषय में पद्मपुराण षष्ठ उत्तर खण्ड अध्याय २३४ में लिखा है कि कलियुग में दूसरी गंगा जिसके समान पृथ्वी में कोई तीर्थ नहीं है क्योंकि विष्णु आदि सब देवता उस में स्थित रहते हैं जो एक वा दो वा तीन बार स्नान करता है उसके सब पाप छूट जाते हैं।

वाराहपुराण उत्तरार्द्ध अध्याय १३८ में लिखा है कि नर्मदा शिवजी की साक्षात् मूर्ति है इसके तप करने पर शिवजी ने कहा है कि हम लिंगरूप हो कर सर्वदा तुम्हारे गर्भ में गणेश सहित निवास करेंगे। और इसी अध्याय में गण्डकी के विषय में लिखा है कि जब गण्डकी ने अत्यन्त घोर तप किया तब विष्णु

भगवान् ने कहा कि हम तुम्हारे तप से प्रसन्न हैं तुम वर मांगो तब गण्डकी ने भगवान् की स्तुति की और कहा कि आप मेरे गर्भ में निवास कर पुत्र हों तब विष्णु महाराज ने विचार कर देखा तो जाना कि यह नदी हमारे संग के लोभ से वरकी याचना करती है तब भगवान् ने कहा कि हम निज भक्तों के अनुग्रह के कारण शालिग्राम शिलारूप हो पुत्र तुल्य सर्वदा तुम्हारे उदर में निवास करेंगे इस लिये तुम सब नदियों में श्रेष्ठ होगी और जो जीव तुम्हारे जल स्नान वा दर्शन पान आदि करेंगे वे निष्पाप हो उत्तम लोक को प्राप्त होंगे।

पण्डितजी ने कहा कि सेठजी अब आप अन्य नदियों के माहात्म्य को छोड़ कर **गङ्गा उत्पत्ति का वर्णन कीजिए।**

सेठजी—जो आज्ञा।

विष्णुपुराण अंश २ अ० ८ में लिखा है कि विष्णु के पदारपद से देवताओं की स्त्रियों के अनुलेप चन्दनादि बहाने वाली श्रीगंगाजी उत्पन्न हुईं जो कि श्रीविष्णुजी के बायें चरण के अँगूठा से निकलीं और ध्रुवजी ने अपने मस्तक पर धारण किया तिसके पीछे सप्तर्षियों के लोक में आईं व उन लोगों ने प्राणायाम कर अपनी जटा धोई तिसके पीछे चन्द्रमण्डल को सींचती हुईं सुमेरु पर्वत पर आईं वहां से जगत् के पवित्र करने के लिये ४ दिशाओं को सीता, अलकनन्दा, चक्षु व भद्रा नामों से प्रसिद्ध हो चलीं उनमें अलकनन्दा में भी सात भेद हैं उन में से जो गङ्गा नाम से प्रसिद्ध है उसे शिवजी ने अपनी जटा में धारण कर लिया वा १०० वर्ष तक न छोड़ा शिवजी की जटा से भागीरथ राजा की तपस्या से आईं वा सगर के पुत्रों की राख पर बह कर उनको तारती हुईं।

श्रीमद्भागवत स्कंद ८ अध्याय २१ श्लोक ४ में लिखा है कि—

धातुः कमण्डलुं जलंतदुरुक्रमस्य,
पादावने जनपवित्रतया नरेन्द्र।
स्वर्द्धन्यभूत्नभसि सा पतती निमार्ष्टि,
लोकत्रयं भगवतो विशदेवकीर्त्तिः॥

हे राजन्! इस बामन के चरण धोने से ब्रह्माजी के कमण्डलु का जल

लोगों को पवित्र करने के लिये गंगाजी बना और विष्णु भगवान् की उज्वल कीर्ति आकाश में गिरती हुई वह धारा तीनों लोकों को पवित्र करती है।

शिवपुराण धर्मसंहिता अध्याय ३३ में लिखा है कि गंगा विष्णु के चरणों से प्रादूर्भूत हो स्वर्ग से गिरती है।

विष्णुपादविनिष्क्रांता गंगा पतति वै दिवः ॥ २८ ॥

बृहन्ननारदीय पुराण अ० १५ श्लोक ९९ से १०६ तक महादेवजी भागीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर बोले कि हे राजन् वर मांगो। तब भागीरथ ने हाथ जोड़ कर कहा कि हे महेश्वरजी जो आप मुझको वर दिया चाहते हैं तो गङ्गाजी देकर मेरे बड़ों का उद्धार कीजिये तब शिवजी बोले कि हे राजन् हमने गङ्गा दी और तिनकी परम गति अरु मोक्ष भी दी ऐसे कह शिवजी अन्तर्धान भये और शिवजी के मुकुट से निकली लोकपावनी गंगाजी सब जगत् को पवित्र करती भागीरथ के पीछे चलीं। तभी से वह निर्मल सब के मल हरने वाली गंगाजी सब लोकों में (भागीरथी) ऐसे विख्यात भई ॥ १०६ ॥

पद्मपुराण पष्ठ उत्तरखण्ड अ० २१ में लिखा है।

पूर्वजानां हितार्थाय गतो सौ हेमके गिरौ।
तत्र गत्वा तपस्तप्तं वर्षाणामयुतं तदा ॥ १० ॥
आदिदेवः प्रसन्नो भू यो सौ देवनिरंजनः।
तेन दत्ता इयं गङ्गा आकाशात्समुपस्थिता ॥ ११ ॥
तत्र विश्वेश्वरो देवो यत्र तिष्ठति नित्यशः।
गंगा दृष्ट्वाऽऽगता तेन गृहीता जाह्नवी तदा ॥ १२ ॥
जटाजूटे च संध्यार्य वर्षाणामयुतं स्थितम्।
ननिःसृतातदा गंगा ईशस्यैव प्रभावतः ॥ १३ ॥
विचारितं तदा तेन क्वगता मम मातृका।
स ध्यानेन विचार्यैवं गृहीता चेश्वरेण तु ॥ १४ ॥
ततः कैलासमगमत्तत्तु भगीरथो नृपः।
तत्र गत्वा मुनिःश्रेष्ठ ह्यकरोदुल्वणं तपः ॥ १५ ॥

महादेवजी बोले कि भागीरथ ने अपने पुरुषाओं के हित के लिये हिमांचल पर जाकर दस हजार वर्ष तपस्या की तब आदि देव प्रसन्न हुये। उन्होंने आकाश से इन गंगाजी को दिया वहीं पर विश्वेश्वर देव सदा स्थित रहते हैं जब भागीरथ ने गंगा को आते न देखा जो महादेव की जटाओं में दस हजार वर्ष स्थित रहीं और उन्हीं के प्रभाव से न निकलीं तब भागीरथ ने विचार किया कि हमारी माता कहां गई और ध्यान से जाना कि महादेवजी ने ग्रहण कर ली। तब भागीरथ महाराज कैलास पर गये और वहां जाकर घोर तपस्या की जिससे महादेव प्रसन्न होकर बोले कि मैं गङ्गाजी को दूंगा उसी समय एक बाल गङ्गाजी को दिया ॥ १६ ॥ भागीरथ गंगा को लेकर पाताल में जहां उनके पुरुखे भस्म हुये ले गये गङ्गाजी का पहिला नाम अलकनन्दा था

आराधितस्तदा तेन दत्तवानहमापगाम्।
एकं केशं परित्यज्य दत्ता त्रिपथगा तदा ॥ १६
स गृहीत्वा गतो गंगां पाताले यत्र पूर्वजाः।
अलकनंदा तदा नाम गंगायाः प्रथमं स्मृतम् ॥ १७

शिवपुराण सनत्कुमार संहिता अ० १२ में लिखा है कि शिव के दक्षिण नेत्र से श्वेत कांति वाला जल निकला वही भूर्भुवादि सब लोकों में व्याप्त हो गया और वही यहां स्थित होकर पृथ्वीमें आनेसे गंगा कहाती हैं हे ब्राह्मणो! वह गंगा प्रथम नेत्रों से उत्पन्न हुई है ॥ ६ ॥

दक्षिणान्नयनान्मुक्तो जलबिन्दुः सितप्रभा।
सा सर्वेषु लोकेषु गता वै भूर्भुवादिकम् ॥
उपस्थाये मांगां प्राप्ता तस्माद्गङ्गेति चोच्यते।
नेत्राभ्यां प्रथमाज्जाता गङ्गेति द्विजसत्तम ॥

वाल्मीकि रामायण सर्ग ३६ श्लोक १२ से १५ तक॥

चोदितो रामवाक्येन विश्वामित्रो महामुनिः।
वृद्धिं जन्म च गङ्गाया वक्तुमेवोपचक्रमे ॥
शैलेन्द्रो हि भवान् राम धातूनामाकरो महान्।

तस्य कन्या द्वयं राम रूपेण प्रतिमं भुवि ॥
या मेरुदुहिता राम तयोर्माता सुमध्यमा ।
नाम्ना मेना मनोज्ञा वै पत्नी हिमवतः प्रिया ॥
तस्यां गङ्गेयमभवज्ज्येष्ठा हिमवतः प्रिया ।
तस्या नाम द्वितीयाभूत्कन्या तस्यैव राघव ॥

रामचन्द्रजीने विश्वामित्र ऋषिसे गङ्गाका वृत्तान्त पूंछा तो उन्होंने उत्तर में कहा कि पर्वतोंका राजा हिमवान् जो धातुओं की खानि तथा बड़ा है उसके यहां दो कन्या ऐसी उत्पन्न हुईं जिनके समान रूपमें पृथ्वीपर कोई नहीं था, हे राम ! सुन्दर कमर वाली मेरुकी बेटी मैनारम्य हिमवान् की प्यारी स्त्री इन दोनों की माता थी । अय राघव ! इस मैना से हिमवान् की बड़ी बेटी गङ्गा और छोटी उमा उत्पन्न हुई । देखिये देवी भागवत स्कन्द ९ अध्याय ६ ।

लक्ष्मीसरस्वतीगंगा तिस्त्रोभार्या हरेरपि ।
प्रेम्णा समास्ता तिष्ठन्ति सततं हरिसन्निधौ ॥१७॥

अर्थात् लक्ष्मी, सरस्वती और गङ्गा तीनों विष्णुजी की स्त्रियां हैं, वे तीनों समान प्रीति के साथ विष्णुजीके पास सदा रहती हैं । 'गङ्गा' ने एकबार विष्णु का मुख कामातुर हुए कटाक्षके साथ मुसकराकर बारंबार देखना आरम्भ किया, विष्णुजी उस समय गङ्गा के मुखको देख कर हंस दिये, इस बात को देखकर लक्ष्मी ने तो क्षमा की परन्तु सरस्वती ने ऐसा न किया और क्रोधित होकर विष्णु से बोलीं कि धर्मात्मा और श्रेष्ठ भर्ता को अपनी स्त्रियों को समदृष्टि से देखना चाहिये दुष्ट पतिका स्वभाव इसके विरुद्ध होता है, गंगाधर ! मैंने जान लिया कि तेरा सौभाग्य गंगापर अधिक है और लक्ष्मी पर उसके बराबर । अय प्रभु ! मुझपर कुछ नहीं अब मुझ अभागिन का यहां जीना व्यर्थ है तुमको सब मनुष्य सत्वरूप कहते हैं वे सब मूर्ख हैं वेदको नहीं जानते हैं, इस बातको सुन सरस्वती को क्रोधमें चूर देख विष्णु जी सभासे बाहर चलदिये । इसके पश्चात् श्लोक ४८ से ४२ तक यह लिखा है कि उनके चलेजाने पर सरस्वती गंगाको नाना प्रकार की गालियां देने लगीं और चोटी पकड़ने को दौड़ी परन्तु लक्ष्मीजी ने बीचबिचाव कर दिया इस पर सरस्वती ने लक्ष्मी को शाप दिया कि उस विपरीतभावको देखकर यहां तो नदी और वृक्षके समान बैठी रही सो तू जा

अर्थात् नदी और वृक्ष होजा । गंगाने सरस्वती की यह दशा देखकर, लक्ष्मी से कहा कि इस दुःशीला अपवादिनी मरी को छोड़ देखें यह बुरे मुंह वाली, सदा कलह रखने वाली मेरा क्या करलेवेगी लोग मेरे प्रभावको देखलें मैं भी शाप देती हूं कि यह भी कलियुग में लोगों के पाप ग्रहण करेगी सरस्वती ने इस पर गङ्गा को उलट कर कहा कि तू भी नदी बनकर लोगों के पापको प्राप्त होगी।

इसके पश्चात् इसी अध्यायमें ४३ श्लोक से ६७ तक लिखा है कि चतुर्भुज विष्णुजी चारभुज वाले चार पारषदोंको साथ लेकर आये और सरस्वती को पकड़ लिया और लक्ष्मी से बोले कि तू एक कलासे धर्मध्वज के घर जन्म लेकर शङ्खचूड़ की स्त्री बनेगी फिर भाग्यवश वृक्ष बन जावेगी पीछे से फिर मेरी पत्नी बनेगी और एक कलासे शीघ्र पद्मावती नाम नदी बन जा और अय गंगा तू भी एक अंशसे नदी बन और भागीरथके तपसे महीतल में जाकर समुद्रकी स्त्री हो जा एक कलासे राजा शान्तनुकी स्त्री बन और अय सरस्वती तू भी सौतों के साथ लड़ाई करनेका फल भोग एक कलासे नदी बन ब्रह्माके भवन में जाकर ब्रह्माकी स्त्री बनजा गंगा शिवजी के घर जावे मेरे यहां केवल लक्ष्मी ही रहे। क्योंकि यह मेरी सुशीला, क्रोधरहित स्त्री है मेरी भक्त तथा सतीरूप है बहुत स्त्रियोंको रखने वाला सदा दुःखी रहता है और एक स्त्री वाला सदा सुखी। यह बात सुनकर तीनों देवी परस्पर लपटकर रोने लगीं और भी भयभीत होकर शापमोचनकी प्रार्थना करने लगीं। परन्तु गंगा बोली हे जगत्पति किस अपराध से तुमने मुझे छोड़ दिया मैं शरीर त्याग करूंगी और तुमको निर्दोषका दोष लगेगा। जो पुरुष पृथ्वी में निर्दोष स्त्री का त्याग करता है वह चाहे सर्वेश्वर भी क्यों न हो नरक को प्राप्त होता है। फिर पीछे लक्ष्मी ने बहुत कुछ सरस्वती के बारे में कहा विष्णु जी बोले कि अच्छा सरस्वती एक कल्प से नदी बने और आधी ब्रह्मा के घर जाय और आप मेरे घरमें रहे कलियुग के पांच हजार वर्ष गुजरने पर तुम्हारी तीनों की मोक्ष होगी और मेरे घर आओगी।

श्रीमान् **पण्डितजी अब हमारी** आप से यह प्रार्थना है जो गंगा जी इस समय भारतखण्ड में बह रही हैं वह **श्रीमद्भागवत** के लेखानुसार **वामन महाराज** के चरणों का धोवन या **शिवपुराण धर्मसंहिता और विष्णुपुराण के कथानुसार गङ्गा** विष्णु महाराज के चरण से उत्पन्न हुई है या **शिवपुराण सनत्कुमार** संहिता लिखित शिवजी के

दक्षिण नेत्र का श्वेत जल है वा **वाल्मीकि रामायण** के कहने के अनुसार गंगा हिमवान् की बेटी है अथवा **बृहन्नारदीय उपपुराण** के अनुसार शिवजी के मुकुटसे निकली हुई हैं याकि **देवीभागवत स्कन्द** ९ के अनुसार विष्णु महाराज की तीनों स्त्रियों के लड़ने झगड़ने और कोसने पीटने के कारण नदियां हो गई हैं ? अंग्रेज बहादुर ने तो तहक़ीक़ात कर यह प्रत्यक्ष प्रकार से प्रकट ही कर दिया है कि गंगा हिमालय पहाड़ की गंगोत्री नाम चोटी से निकल बंगाले की खाड़ी में जाकर हिन्द समुद्र से मिलती है अब आप किसको ठीक मानेंगे ।

इसके उपरांत पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखण्ड अध्याय २४ को पढ़िये तो मालूम हो जायगा कि श्रीगंगाजी ने श्रीकृष्ण महाराज से कहा है कि कलियुगके करोड़ों ब्रह्महत्यादिक पापों से युक्त पुरुष मेरे जल में स्नान करते हैं जिसके कारण मेरा शरीर पापमय है बतलाइये मैं क्योंकर उस पाप से बचूं तब श्रीकृष्ण महाराज ने कहा कि तुम प्राची सरस्वती में स्नान करो इस पर गंगे ने कहा कि प्रति दिन मैं आ नहीं सकती तब श्रीमहाराज ने कहा कि तुम त्रिस्पृशा व्रतको करो सब पापों से छूट जाओगी तब गङ्गा ने उसकी विधि पूंछी और व्रत किया । ब्रह्मवैवर्त्त-पुराण के प्रकृत खण्ड अध्याय १० में लिखा है कि हे गंगे सहस्रों पापियों के स्नान से जो पाप तुम को होगा वह मेरे भक्ति के दर्शन मात्र से नाश हो जायगा ।

सहस्रपापिनां स्नानाद्यत्पापं वै भविष्यति ।
मद्भक्तैकदर्शनेन तदेव हि विनश्यति ॥ ७१ ॥

श्रीमान् पण्डितजी यदि आपका विश्वास वर्त्तमान धर्म सभा के माननीय पुराणों पर है तो आप गङ्गा को क्यों पापी बनाते हैं जिसके लिये उस को त्रिस्पृशा व्रत अथवा विष्णु भक्त के दर्शन करने की आवश्यकता होती है इन से तो गङ्गा स्नान करनेवाले स्वयं त्रिस्पृशा व्रत अथवा विष्णुभक्त के दर्शन कर पापों को दूर कर लिया करें तो बहुत अच्छा हो क्योंकि गङ्गा को क्लेश पहुँचाना अच्छा नहीं ।

पण्डितजी—श्रीमान् सेठजी अब इस विषय में आपको कुछ कहने की आवश्यकता नहीं ,क्योंकि मेरी समझ में तो आ गया कि उत्तम पुरुषों का

नाम तीर्थ है और उनके सत्संग से अपने आचरणों को सुधारना ही सच्चा स्नान है। क्योंकि जल से शरीर शुद्धि होती है आत्मा की नहीं जैसा कि प्रथम आप ने हमको सुनाया अब रहने दीजिये।

सेठजी—बहुत अच्छा मैं इस विषय को शीघ्र समाप्त करता हूं देखिये श्रीमहाराज उपरोक्त बातों के उपरांत श्रीमद्भागवत स्कन्द १२ अध्याय २ में कैसा स्पष्ट कहा है कि **कलियुग में लोग दूर जलको ही तीर्थ मानेंगे जैसा कि—"दूरे वार्यपनं तीर्थं"**

इस लेख से ही तो स्पष्ट प्रकट हो रहा है कि सतयुग, द्वापर और त्रेता में जल को तीर्थ नहीं मानते थे फिर आप कलियुग में दूर जल को क्यों तीर्थ मानते हैं।

इसके अतिरिक्त **श्रीमद्भागवत माहात्म्य** अध्याय १ में नारद मुनि ने कहा है कि बड़े भयंकर, कुत्सित कर्म करने वाले नास्तिक पापी मनुष्य तीर्थों में वास करने लगे हैं इस लिये तीर्थों का सार अर्थात् फल जाता रहा जैसाकि—

अत्युग्रभूरिकर्माणो नास्तिका रौरवा जनाः।
तेऽपि तिष्ठन्ति तीर्थेषु तीर्थसारस्ततो गतः॥ ७१॥

श्रीमान् पण्डितजी **वा नारदजी** महाराज के कथन से स्पष्ट, दुराचारी, वेदविरोधी, स्वार्थी आदि अपगुणयुक्त मनुष्य निवास करते हैं वहां जाने से कुछ लाभ नहीं होता इस लिये जो मनुष्य उत्तम पुरुषों के सत्संग से ज्ञान रूपी कुण्डके सत्यरूपी जलमें स्नानकर राग द्वेष रूपी मलको दूर करने के अर्थ **मानसतीर्थ में स्नान करते हैं वही मोक्षको प्राप्त होते हैं जैसा गरुड़पुराण श्लोक १११ में**

ज्ञानहृदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥

अध्याय १ में कहा है कि जो मनुष्य ज्ञानी हैं वे परमगति अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करते हैं और पापीपुरुष दुःख सहित यमकी यातना को प्राप्त होते हैं।

येन राज्ञानं शीलश्च ते यान्ति परमां गतिम्।

पापशीला नरा यांति दुःखेनयमयातनाम् ॥

और अध्याय १६ में कहा है कि तत्वके जानने वाले मोक्षको और धर्म करने वाले स्वर्ग पाते हैं और पापी दुर्गति को प्राप्त हो पक्षी आदि के यहां उत्पन्न होकर मरते हैं।

मोक्षं गच्छन्ति तत्वज्ञा धार्मिकाः स्वर्गतिं नराः ।
पापिनो दुर्गतिं यान्ति संसरन्ति खगादयः ॥ १६ ॥

श्रीमान् पंडितजी ने कहा कि सेठजी अब इस विषय को समाप्त कीजिये क्योंकि हमने पुराणोंके लेखसे ही तीर्थ विषय के तत्वको जान लिया सच तो यह है कि पुराणलीला अपार है।

सेठजी ने कहा कि जो आज्ञा श्रीमान् की है मैं उसीका पालन करूंगा परन्तु मुझको अभी इस विषयमें यह दिखलाना शेष रह गया है कि वेदानुकूल पुराणों में स्त्रियों के लिये पतिसेवा पति पूजा पतिकी आज्ञा पालन करनाही सर्वोपरि तीर्थ बतलाया है और उनको स्वतंत्रता पूर्वक किसी कार्य्य के करने की आज्ञा नहीं दी परन्तु फिर उन्हीं पुराणों में उपरोक्त लेख के विरुद्ध स्नान और दर्शन करने से नाना फलों की प्राप्ति उनको बतलाई है।

श्रीमान् पंडित जी—सेठजी इस विषय में हमारी भी यही सम्मति है जो आपकी है अर्थात् स्त्रियों को पतिसेवा के अतिरिक्त बिना उनकी आज्ञा के स्वतन्त्रा पूर्वक कोई काम न करना चाहिये इस लिये हम इस विषय को सुनना नहीं चाहते।

अन्य सज्जनोंने कहा कि हमको भी इस विषय में कुछ सुनना नहीं है क्योंकि हमने अन्य-पुस्तकों में पढ़ा और सुना है। -

सेठजी—बहुत अच्छा जो आप सब महाशयोंकी आज्ञा है वही मेरा कर्त्तव्य है इसलिये अब मैं इस विषय को समाप्त करता हूं ओ३म् शम्।

इसी समय लाला रामसहायजी ने बनारससे आकर श्रीमान् पंडितजी को पालागनकर उनके बड़े भाई साहिबका पत्र दिया जिसको पढ़ श्रीमान् ने कहा कि सेठजी मुझको मेरे बड़े भाई साहिबने बहुत शीघ्र एक मुकद्दमे की पैरवी के

लिये बुलाया है। इस कारण मैं कल जानेका प्रबन्ध करूंगा और न जानें मुझको कितना समय इस कार्य्य के करने में लगे इस लिये अब आप पुराण के कथनको समाप्त कर दीजिये।

सेठजीने यह सुन निवेदन किया कि अभी तो मुझको बहुत कुछ पुराणों के विषय में सुनाना है और विशेषकर दो तीन विषय तो जरूर ही कहना हैं और यह कार्य्य भी परमआवश्यक हैं इस कारण जब आप अपने भाई साहिब के कार्य्य से आनन्दपूर्वक लौटकर आजायेंगे तब मैं फिर निवेदन करूंगा।

श्रीमान् पण्डितजी—बहुत अच्छा अन्य सब महाशयों ने कहाकि हमारी भी यही सम्मति है।

पण्डितजी—सेठजी आपने इस समय तक जो २ विषय सुनाये उनसे हमको अनेकान बातों का पता लगा और अच्छे प्रकार यह प्रकट हो गया कि कि जिस सूरत में यह पुराण इस समय उपस्थित हैं वह कदापि महर्षि व्यास प्रणीत नहीं हैं। क्योंकि इन में हमारे बड़ों की निन्दा भरी पड़ी है जिसको सुन सुनकर मेरा हृदय फटा जाता है हां इनमें जो बातें उत्तम२ हैं वह व्यास महाराज की कही हुई हों। सच तो यह है कि **महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने** वेदोक्त धर्म को सर्वोपरि सिद्ध कर ऋषियों और मुनियों के महत्व को चिरायुकर भारत के सिर का मुकुट रख लिया और सत्य सनातन धर्म के ओ३म् रूपी झण्डे को भूमण्डल पर फहरा दिया। हम तो आज मन से उन महात्मा के चरणों पो सिर नवाते हैं तदन्तर आप को आशीर्वाद देते हैं कि परमेश्वर आप को सर्व प्रकार के आनन्द दे फिर अपने कटुवाक्यों के कहने की क्षमा चाहते हैं सेठजी आपकी सहनशीलता ने आज मुझको पुराणों के लेखों पर अविश्वास कर दिया ईश्वर आप को इस से भी अधिक सहनशक्ति प्रदान करे जिससे आप नाना प्रकार के कटु वाक्यों को सहन करते हुये देश के उपकार में तन, मन, धन से लगे रहें।

अब अन्त को आप से हमारी यही आज्ञा है कि आप इस विषय को शीघ्र मुद्रित करा दीजिये जैसा कि हमसे आप प्रथम कह चुके हैं जिससे समस्त भारत वासियों को पुराणों के लेखों पर विचार करने का मौक़ा मिले।

अन्य महाशय गणों की ओर से लाला केदारनाथजी ने कहा।

कि हम आज श्रीमान पण्डितजी और सेठजी को धन्यवाद देते हैं जिनकी परम कृपा से हम सबको अवसर मिला कि जिसके कारण पुराणों की अपूर्व और अद्भुत बातें कर्ण गोचर हुई आगे और सुनने की आशा है इसके उपरांत श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वतीजी और उनके गुरु स्वामी विरजानन्दजी का कोटानिकोट धन्यवाद देते हैं जिन्होंने भारत के धर्मकी डूबती हुई नय्या को अपनी विद्या के बल से बचा लिया।

सेठजी—ने कहा कि प्रथम मैं उस परमेश्वर जगदीश्वर सर्वशक्तिमान्को कोटिशः धन्यवाद देता हूं जिनकी परम कृपा और दया अनुग्रहसे मेरी इच्छा पूर्ण हुई और आगेको मनोकामना सिद्ध होनेकी आशा है। इसके पश्चात् श्रीमान् पंडित रामप्रसादजी और अन्य साहिबानको धन्यवाद देताहूं जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर मेरी मनोकामना सफल की। श्रीमान् पण्डितजी व अन्य महाशयोंने जो कुछ मेरे लिये कहा है मैं उसके लिये कृतज्ञ हूं और आशा है सदा मुझ सेवक पर ऐसी ही दया बनाये रहेंगे और धर्मके विषय में निष्पक्षता की कसौटी को अपने हाथ से न जाने देंगे इस के उपरांत बृटिश गवर्नमेण्ट का धन्यवाद देताहूं जिनके राज्य में आनन्द पूर्वक सभ्यतायुक्त प्रत्येक पुरुष अपने विचारोंको प्रकट कर सका है परमेश्वर हमारे शिरपर ऐसी न्यायशीला गवर्मेण्ट को सदा बनाए रखे जिनके राज्यमें शेर, बकरी निर्वैर होकर एक घाट पानी पीते हैं।

इसके पश्चात् महाशय लख्मीलाल ने कवि नाथूरामशङ्कर शर्माका कहा हुआ निम्न लिखित भजन उत्तम प्रकारसे गायन किया।

दोहा—जिसकी माता ने प्रजा, पाली प्रेम पसार।
उस प्रभुकी प्रभुता बनी, लोक जीवनाधार॥

भजन ।

टेक—सप्तम एडवर्ड महाराज, रक्षा हम सबकी करते हैं ।

श्री, बल, बोध अखण्ड प्रताप, साहस धर्म सुकर्म कलाप । ऐसे सद्गुणधारी आप, मनमें भूल नहीं भरते हैं ॥ स० ए० म० र० ह० करते हैं ॥ १ ॥

अपनी मात्राके अनुसार, पूरा करें प्रजापर प्यार । किसके ऊपर परमउदार, हितका हाथ नहीं धरते हैं ॥ स० ए० म० र० ह० करते हैं ॥ २ ॥

भिक्षुक भीरु वीर भूपाल, पण्डित मूढ़ धनी कङ्गाल । हिल मिल काटें सुखसे काल, पापी मारखाय मरते हैं ॥ स० ए० म० ह० करते हैं ॥ ३ ॥

चारों राजनीतिके अङ्ग, रखते रहें न्यायके सङ्ग । "शंकर" शासनके रस रङ्ग, डाकू देख २ डरते हैं ॥ स० ए० म० र० ह० करते हैं ॥ ४ ॥

जिसको सुनकर सब महाशयोंने करतलध्वनिसे प्रसन्नता प्रकट सप्तमएडवर्ड महाराजको धन्यवाद दिया इस के पश्चात् सेठजीने निम्नलिखित मन्त्रको पढ़ शान्ति की ।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳशान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳशान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि ॥

श्री पण्डितजीने चलनेकी तैयारी की।

सेठजीने खड़े होकर हाथ जोड़ बड़ी नम्रतासे श्रीमान्‌को नमस्ते व अन्य महाशयोंको यथायोग्य कहा।

श्री पण्डितजीने प्रसन्नतापूर्वक आयुष्मान् कहा और चल दिये।

अन्य सज्जनोंने यथायोग्य कहा।

सेठजी अपने कार्य्यमें लग गये

इति चतुर्दश परिच्छेदः

पुराणतत्त्वप्रकाशका द्वितीय भाग

समाप्त।



* ओ३म् *

विज्ञापन ।

गृह-नगर-देश और राष्ट्र को

सुखमय बनाने के लिये

हमें आवश्यक है कि हम कुटुम्ब सहित उन पुस्तकों का पाठ करें जिन में आनन्द—शान्ति और स्वाधीनता के सरल उपाय बताए गए हैं क्योंकि इन्हीं उपायों से धन आदि पदार्थ भी मिल सकते हैं और इन्हीं के पाठ से हम अपने जीवन को आदर्श-धार्मिक और वीर जीवन बनाते हुये यथार्थ सुखी हो सकते हैं।

हमारी पुस्तकें

अपनी गुणग्राहकता-भाषा की सरलता-छपाई की सुन्दरता और मूल्य की अल्पता के कारण जैसी लोकप्रिय हैं उनके कहने की आवश्यकता नहीं क्योंकि इन में से बहुधा पुस्तकों के कई २ एडीशन निकल चुके हैं एक बार हाथ में ले लेने से जब तक आप पुस्तक को समाप्त न कर लेंगे तब तक आपका जी उसको छोड़ने को न चाहेगा।

शरीर विज्ञान

इस पुस्तक में शरीर किन किन पदार्थों से बना। पंचमहाभूत किनको कहते हैं। वायु और उस के भेद, श्वास-तेज-जल-पसीना-शरीर की गलियां-शरीर के भाग। मस्तक-आंख-नाक-कान-मुंह-दान्त-मसूड़े-तालु-गाल-कनपटी-होंठ-ठोडी-गर्दन-धड़-हंसली-ठठेरी-हड्डी-चरबी-मांस—रुधिर—खाल—बाल आदि की बनावट-शिरा धमनी-स्नायु पेशी-कण्डरा-फुफ्फुस-हृदय-फेफड़ा अन्तड़ियां-सिवनी-मर्मस्थान-तिल्ली और जिगर क्या है? भोजन कैसे कहां पचता है भूख प्यास कैसे लगती है इस प्रकार की लगभग १०० बातों का वर्णन सरल भाषा में किया गया है साथ ही उन नियमों को भी बतलाया गया है जिन पर चलने से शरीर आरोग्य रह सकता है। बिना शरीर की बनावट के ज्ञान से इसको निरोग रखना कठिन है। पूर्ण सुख-धन और ऐश्वर्य शरीर को स्वस्थ रखने से ही मिलते हैं इस लिये—

यदि आप

कुटुम्ब सहित सुखी रहना चाहते हैं तो इस अनुपम पुस्तक का पाठ कर उसके ज्ञान से बालकों और स्त्रियों को भी अलंकृत कीजिये।

पुस्तक सचित्र है

और मोटे सफ़ेद कागज़ पर छपाई गई है मूल्य ॥) डा० व्यय ।-)

बालक बालिकाओं को कण्ठ कराने
और
प्रति दिन स्वाध्याय करने योग्य
नवीन पुस्तक

रत्न भंडार।

यह पुस्तक टेक्स्टबुक कमेटी यू. पी. ने इनाम में देने को स्वीकार की है।
और इसकी भारत के सभी विद्वानों ने प्रशंसा की है।

देखिये।

'सरस्वती' सम्पादक जी क्या कहते हैं।

"पद्यों का चुनाव अच्छा हुआ है पुस्तक सबके पढ़ने लायक़ है मूल्य ।=)"

इनके अतिरिक्त

श्री० बाबू नैपालसिंह जी प्रिन्सिपल राजाराम कालेज कोल्हापुर। श्री कुंवर हुकुमसिंह जी प्रधान आ० प्र० नि० सभा। श्री० बाबू गंगासहाय जी असिस्टेन्ट इंस्पेक्टर स्कूल्स कमिश्नरी रुहेलखंड। श्री पं० महेशीलाल जी तेवारी डिप्टी इनसपेक्टर आदि महानुभावों की राय है कि—

"पुस्तक अति उत्तम है इसको हर एक धर्म वाला पढ़कर बड़ा लाभ उठा सकता है। बालकों के लिये यह पुस्तक विशेष उपयोगी है। धर्म शिक्षा के स्थान में तथा पाठ्य पुस्तकों की जगह पाठशालाओं में इस पुस्तक को स्थान देना चाहिए"।

हमारी अन्य

प्रसिद्ध उपयोगी पुस्तकें ।

नारायणीशिक्षा अर्थात् गृहस्थाश्रम प्रथम भाग १॥) डा० ।।=) द्वितीय भाग १) डा० ।≡) पुराणतत्त्वप्रकाश तीन भाग २) डा० ।।=)॥ प्रेमधारा क़ीमत ।॥) डा०।) क्या हम रामायण पढ़ते हैं की०=) कलियुगी परिवार का एक दृश्य ।।) डा० ।) धर्मात्मा चाची और अभागा भतीजा।-) आनन्दमयी रात्रि का स्वप्न =) गर्भाधान विधि ≡) वीर्यरक्षा =) सत्य-नारायण की प्राचीन कथा =) यथार्थ शांतिनिरूपण ।) शांतिशतक =) नीत्युक्त स्त्री धर्म ≡) स्मृत्युक्त स्त्री धर्म =) द्वैतप्रकाश -) संसार फल -) ईश्वरसिद्धि)॥ चित्रशाला)॥ बुद्धि अज्ञानकीबातें)॥ प्रेमपुष्पावली-)॥ भरतोपदेश)॥ संध्या)। मित्रानन्द -)॥ भजनसारसंग्रह -)॥ स्त्री ज्ञान गजरा १ भाग)॥ द्वितीय भाग -)॥ भजन पचासा -) मूर्तिपूजाविचार)। आयुर्विचार -)। माँस का डर -)॥ हवन)। संध्यादर्पण -)॥

आदर्श जीवन-चरित्र ।

सरस्वतीन्द्र जीवन ।

अर्थात्

श्री १०८ महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी

का जीवन चरित्र ।

तृतीय एडीशन ।

इसके लिए लोगों की

सम्मति ।

श्री पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी, सम्पादक

"सरस्वती" प्रयाग ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के जितने जीवन प्रकाशित हो चुके हैं उस

में से श्रीयुत लेखरामजी का उर्दू में लिखा हुआ जीवनचरित्र सर्व श्रेष्ठ है। इसी के आधार पर यह सरस्वतीन्द्र जीवन लिखा गया है। आपने लेखरामजी की पुस्तक से मुख्य मुख्य घटनाओं की सामग्री उद्धृत करके इस पुस्तक की रचना की है। इस के सिवाय मास्टर आत्माराम जी तथा लाला राधाकृष्णजी के लेखोंमे भी आपने सहायता लीहै। पुस्तकमें स्वामी जी के साधारण चरित्र के अतिरिक्त उनके शास्त्रार्थ, उनके धर्मोपदेश और ग्रन्थ-निर्माण आदिकी भी बातें हैं। पुस्तक बड़े २ कोई ४०० पृष्ठोंमें समाप्त हुई है। टाइप अच्छा, कागज मोटा है। स्वामी जी, पण्डित लेखराम जी और पण्डित गुरुदत्तजी विद्यार्थी के हाफटोन चित्र भी पुस्तक में हैं। इस पर भी इतनी बड़ी पुस्तकका मूल्य सिर्फ १॥) है। महात्मा जन चाहे जिस देश, जाति, धर्म और सम्प्रदाय के हों उनका चरित्र पढ़ने से कुछ न कुछ लाभ अवश्य ही होता है। जो ऐसा समझते हैं उन्हें स्वामीजी का चरित्र भी पढ़ना और अपने संग्रह में रखना चाहिए"। इत्यादि इत्यादि।

इसके अतिरिक्त—

दशरथ)॥ लक्ष्मण ~) भरत ~)॥ युधिष्ठिर ~) अर्जुन =) भीमसेन =) द्रोणाचार्य ~) विदुर =) दुर्योधन =) धृतराष्ट्र ~) पण्डित गुरुदत्त ~) महात्मा पूरणभक्त ~)॥ महारानी मन्दालसा ~)॥ के भी जीवन मौजूद हैं।

मनोहर ब्लाक द्वारा

1913

छपे चित्र।

श्री स्वामी विरजानन्द जी मूल्य ~) श्री स्वामी दयानन्द जी ~) पं० लेखराम जी ~) पण्डित गुरुदत्तजी ~) महात्मा हंसराज जी ~) महाराजधिराज पञ्चमजार्ज ~) परिचारिका ~) स्वामी श्रद्धानन्द जी ~)

मिलने का पता—

निरञ्जनलाल भद्रगुप्त,

तिलहर ज़िला शाहजहाँपुर यू० पी०।